वर्ष-6, अंक : 11 जनवरी-जून, 2018

जेएनयू परिसर

इस अंक के कुछ महत्त्वपूर्ण लेखक :

केदारनाथ सिंह, योगेश भटनागर, गरिमा श्रीवास्तव, दीपक शर्मा, सत्येन्द्र सिंह, पराग पावन, शीतांशु भारती, अंजुलता, सुशांत शर्मा, मोहन पुरी, दर्शिनी प्रिया, अनुराधा पाण्डेय, वेद मित्र शुक्ल, धीरेन्द्र कुमार, सुमित चौधरी, धर्मराज कुमार, अभिषेक सौरभ आदि

हमारे भव्य जंगलात उन वन्य जीवों एवं खूबसूरत परिंदों को उद्धृत करते हैं जो हमारे जीवन को उज्जवल बनाते हैं। यदि वे भव्य वन्य जीवन हमें खेलने व देखने को ना मिले तो हमारा जीवन नीरस व रंगहीन हो जाएगा। अतः हमें बचे हुए वन्यजीवों एवं जंगलों का संरक्षण करना चाहिए।

- पं. जवाहरलाल नेहरू

बौम्बेक्स सिबिया

पलाश

जेएनयू परिसर के विगत कई अंकों में हमने परिसर की जैव-विविधता की चर्चा की है ताकि पाठक यह जान सकें कि परिसर की पारिस्थितिकी के संरक्षण में परिसर के समाज का क्या उत्तरदायित्व है, एवं एक समुदाय के रुप में वे क्या योगदान देने में सक्षम हैं?

जेएनयू परिसर अरावली पर्वत श्रृंखला के पठारी भाग में बसे होने के कारण अरावली की वन-संपदा से ही फल-फूल रहा है व इसका संरक्षण एक जागरुक नागरिक होने के नाते हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी है। परिसर के इस अंक में हम अरावली वन-संपदा के उन मुख्य पेड़-पौधों को रेखांकित करेंगे जिनकी उपस्थिति न केवल जैव-विविधता के लिए आवश्यक है वरन् मानव-समाज के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

इनमें से कुछ मुख्य वृक्ष जैसे पलाश (*Butea monosperma*) ढाव (*Anogeissus pendulla*), रोहिड़ा (*Tecomella undelata*) कैर (*capparis deciduas*), पीलू (*salvadara persica*), खेजड़ी, (*Prosopis cineraria*) आदि शामिल है। इनके अलावा भी बहुत सी ऐसी झाड़िया और पौधे हैं जो अरावली श्रृंखला की मूलभूत वनस्पति हैं।

प्रसिद्ध प्रकृतिविद् प्रदीप किशन की पुस्तक *'Trees of Delhi'* के अनुसार बहुत से ऐसे पेड़-पौधे हैं जो देश की आजादी से पूर्व से दिल्ली में पाए जाते है जिनमें से सेमल Bombax ceiba मुख्य है। इसके अलावा भी बहुत से ऐसे पेड़ हैं जिनमें इमली, गूलर, जामुन, आम, अशोक, बरगद आदि भी शामिल हैं जो राजधानी दिल्ली में सदियों से उपस्थित हैं जो कि न केवल जैव-विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, वरन् मानव समाज के जीवन में भी अति-उपयोगी है क्योंकि ये वृक्ष फल-फूलों के अलावा औषधि जगत में भी बहुत से औषधीय महत्व के कारण जाने जाते हैं; उदाहरण के तौर पर सेमल व पलाश की छाल का उपयोग उदर-विकारों के इलाज में लाभकारी सिद्ध हुआ है। कैर, खेजड़ी व इमली के फलों का उपयोग सब्जी व अचार आदि बनाने में होता है। सेमल के फल से निकली रुई रजाई-गद्दों व कोमल खिलौने बनाने में इस्तेमाल होती है व इनकी लकड़ी भी जूतों के सांचे तथा मत्सय-उद्योग में बखूबी इस्तेमाल होती है। वर्तमान समय में मूल अरावली वन-संपदा बहुत तेजी से घट रही है जिसके कई कारण हैं; मगर प्रमुख रुप से खनन् व निर्माण कार्य हैं। इन सब में महत्वपूर्ण विलायती कीकर *Prossopis juliflora* की बढ़ती तादाद है जो किसी भी पौधे को पनपने नहीं देती व जल-स्तर भी प्रभावित करती है जिससे समूची खाद्य-श्रृंखला नकारात्मक रुप से प्रभावित होती है। यदि समय रहते इस समस्या का समाधान नहीं किया गया तो वह समय ज्यादा दूर नहीं है, जब संम्पूर्ण-अरावली की वन संपदा को एक भारी त्रासदी का साक्षी होना पड़ेगा। अतः हमें मूल-अरावली पौधे लगा कर परिसर को बचाना अति आवश्यक है जो कि एक अंतिम विकल्प है।

- डॉ. सूर्य प्रकाश

कैर

रोहिड़ा

जेएनयू परिसर

वर्षः 6, अंकः 11, जनवरी-जून 2018

संरक्षक

डॉ. प्रमोद कुमार
कुलसचिव

संपादक-मंडल

प्रो. सुधीर प्रताप सिंह
प्रो. ओमप्रकाश सिंह
डॉ. शीतल शर्मा
डॉ. मलखान सिंह

संपादकीय सहयोग

सुमेर सिंह
डॉ. शिवम शर्मा

टंकण सहयोग

दीपक कुमार

फोटो

वकील अहमद

संपर्कः
राजभाषा प्रकोष्ठ
प्रशासन भवन
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
दूरभाषः 91-11-26704023
ईमेलः hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन/संचालनः अवैतनिक

संपादकीय/2

महिला दिवस पर विशेष/4
गिरिजा देवी की गायकी : सुशांत शर्मा

धरोहर/8
कृष्णा सोबतीः एक मुलाकात : गरिमा श्रीवास्तव

लेखक की दुनिया : कथा/11-25
उस मोड पर... : योगेश भटनागर
आखिर क्यों : मोहन पुरी
क्षितिज पार : दर्शिनी प्रिया

लेखक की दुनिया : कविताएं/26-29
पराग पावन, मिथिलेश कुमारी, वेद मित्र शुक्ल, बेक बेकोव

काव्य सृजन/30-31
केदारनाथ सिंह की कविता : जेएनयू में हिंदी

अनुवाद/32
युन्ना मोरित्स की तीन कविताएँ : शीतांशु भारती

जेएनयूपन/33-37
धीरेन्द्र कुमार, अभिषेक सौरभ, सुमित कुमार चौधरी

लेख/38-48
सत्येन्द्र कुमार, अंजुलता, अनुराधा पाण्डेय

पुस्तक समीक्षा/49
अनुवाद का एक परिचयात्मक अध्ययन : धर्मराज कुमार

स्वास्थ्य/51
बढ़ती उम्र के साथ जीवन प्रबंध का महत्व : दीपक शर्मा

गंगा ढाबा/54
'विद्रोही': जेएनयू की वाचिक परंपरा का कवि :
सुमित चौधरी

गतिविधियाँ/57
सुमेर सिंह, प्रियंका कुमारी, प्रदीप कुमार, गंगा सहाय मीणा

जेएनयू की इस गृह पत्रिका में प्रकाशित विचार स्वयं लेखक के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक-मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

संभावनाएं शेष हैं...

वर्तमान समय घटनाओं और सूचनाओं का है। प्रत्येक क्षण किसी न किसी घटना की सूचना हम तक पहूँचती रहती है और उस पर विमर्श होने के ठीक पहले एक और घटना घट जाती है। ऐसी स्थिति में हमारा मस्तिष्क बार-बार, लगातार घट रही घटनाओं और उनकी सूचनाओं की अतिक्रांति से आगे नहीं बढ़ पाता। यही नहीं बड़ी दुर्घटनाएँ भी हमारी संवेदनाओं को झकझोर नहीं पाती। वे भी सिर्फ सूचना मात्र बनकर रह जाती हैं, और धीरे-धीरे हमारी रोजमर्रा की आदतों की तरह लगने लगती हैं। उन पर हमारा ध्यान बिल्कुल भी नहीं जाता। वैसे ही जैसे अपनी आदतों पर ध्यान नहीं जाता। ऐसे में हमारी संवेदनाएँ सूचनाओं के अम्बार में बहुत नीचे कहीं अतल में दब जाती हैं या धीरे-धीरे क्षरित हो जाती हैं। संवेदना विहीन और भाव शून्य दिलों-दिमाग में अब घटना, दुर्घटना का अन्तर नहीं महसूस होता। केदारनाथ सिंह के शब्दों में कहें तो "फर्क नहीं पड़ता / जहाँ लिखा है प्यार लिख दो सड़क / कोई फर्क नहीं पड़ता / हमारे युग का मुहावरा है / कोई फर्क नहीं पड़ता'' ठीक ऐसे समय में जब हमारी संवेदनाएं शून्य हो रही हों, कोई भी अमानवीय कृत्य हमें विचलित न करता हो, तो क्या हमें मनुष्य कहलाने का अधिकार होगा? मनुष्य होना एक मशीन की तरह होना नहीं है जिसमें सूचनाएं तो अनंत हो किन्तु संवेदनाएं कतई नहीं। वास्तव में मनुष्य होना विवेकवान, संवेदनशील और भावनायुक्त होना है। क्योंकि मनुष्य होने का उच्चतम आदर्श मानवता के आदर्शों का ज्ञान और उसकी प्राप्ति है, जो कि संवेदनशील हुए बिना बिल्कुल भी संभव नहीं। पशु से आदर्श मानव बनने की प्रक्रिया आकस्मिक और यांत्रिक नहीं है। पशु से मनुष्य बनने की प्रक्रिया उसकी संवेदनाओं का उच्चतम विकास है।

साहित्य की जरूरत यहीं बढ़ जाती है। साहित्य हमें संवेदनशील बनाता है। वह मानवीय पीड़ा का संवेदनशील आत्मपरक साक्षात्कार कराता है। साथ ही उसकी मुक्ति के अनिवार्य संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। मानवीय सभ्यता का विकास मार्ग तय करते हुए जहाँ हम पहुँचे हैं, साहित्य उसकी पहचान कराता है और मानवीय संवेदना के उच्चतर विकास की ओर ले जाता है। साहित्य की आवश्यकता हमें हमेशा से रही है। साहित्य और कलाओं के बिना मानवजाति का विकास असम्भव है। यदि पड़ताल करें तो हमारी सभ्यता के विकास के सूत्र और उसका सारा इतिहास हमारे वांड्मय में आसानी से खोजे जा सकते हैं। इतिहास के ग्रंथों में नही वरन् साहित्यिक ग्रंथों में हमारा इतिहास सुरक्षित मिलता है। ऋग्वेद, महाभारत, रामायण की परम्पराएँ जनमानस का अभिन्न हिस्सा हैं। हमारे समाज के बहुत से मानवीय व्यवहार अप्रत्यक्ष रुप से उन्हीं से परिचालित होते हैं।

हमारे देश में साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है और यह जितनी लम्बी रही है उतनी ही बड़ी परिवर्तनकारी भी। भारतीय सभ्यता के विकास के इतिहास में जो बड़े परिवर्तनकारी जन आंदोलन हुए हैं उनमें साहित्य की बड़ी भूमिका रही है। उदाहरणार्थ भक्ति आंदोलन (जो कि भाषा और साहित्य का आंदोलन था) के महान संतों - कबीर, सूर, मीरा, तुलसी, रैदास, नामदेव आदि ने भेद-भाव, उँच-नीच रहित मनुष्य मात्र की एकता के गीत गाए। इस आंदोलन ने भारतीय संस्कृति और उसकी एकता की पहचान पहली बार कराई। पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक एक भारत होने की स्पष्टता यहीं से आती है। राष्ट्र की संकल्पना के बीज भी इन्हीं संतों ने बोए जिसकी अनुगूँज हमें स्वतंत्रता-संघर्ष में सुनाई पड़ती है। अंग्रेजी दासता से मुक्ति में भक्ति आंदोलन की प्रेरणा महत्वपूर्ण रही है।

आजादी की लड़ाई के दौरान राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने बराबरी पर आधारित जिस 'राम राज्य' की संकल्पना कर "रघुपति राघव राजाराम.../ ईश्वर अल्ला तेरे नाम या वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे" जैसे गीत गाये। कालांतर में यही गीत सम्पूर्ण भारतीय मानस को एकजुट कर अंग्रेजी उपनिवेशवादी दासता से मुक्ति की प्रेरणा देते हैं। जिसकी प्रेरणा भक्ति साहित्य ही है।

जिस विश्व में हम रहते हैं, साहित्य उसकी विविधता, सुन्दरता, आस्था और लगाव को दर्शाता है। जीवन के प्रति लगाव और उसकी बेहतरी की चिंता पैदा करता है। संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। साहित्य अन्य विषयों से इस बात में भी विशिष्ट है कि यह निर्बलों, असहायों एवं हाशिये के समाज की आवाज बनकर उनको मुख्य धारा में लाने की

बात करता है। पिछड़ों एवं दलितों की लड़ाई लड़ता है। महात्मा फुले, पंडिता रमाबाई जैसे समाज सुधारक कबीर, रैदास, नामदेव, मीरा आदि की वाणी से प्रेरणा ग्रहण कर समाज में व्याप्त शोषणकारी व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करतें हैं और सफल होते हैं। सामाजिक चेतना के जो तत्व ऐतिहासिक दस्तावेजों में नहीं मिलते, साहित्य उनकों सामने लाता है। भारतीय किसान जीवन और शोषण की जो तस्वीर प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' में उकेरी है वह किसानों की व्यथा समझने की एक मुकम्मल तस्वीर है। इतिहास, समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के आंकड़ों के द्वारा किसान जीवन और अन्य समस्याओं की असली पहचान संभव नहीं है। समाज में असमानता दूर करने के विशिष्ट अस्मितावादी विमर्शों - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि में साहित्य की भूमिका जगजाहिर है बल्कि यह कहें कि ये आंदोलन साहित्यिक आंदोलन ही हैं तो गलत नहीं होगा। साहित्य हमें जहाँ एक सहृदय, संवेदनशील और बेहतर मनुष्य बनाता है, वहीं बड़े बदलावों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा भी देता है।

इसलिए तेजी से बदल रहे आज के समय में जहाँ वस्तुओं की दुनिया का विकास तो तीव्रता से हो रहा है परन्तु मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं का विकास रुक-सा गया है। अतः हमें साहित्य के पास जाने की सख्त जरूरत है।

- सुधीर प्रताप सिंह

रचनाएँ आमंत्रित

जेएनयू परिसर के आगामी अंकों के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। कृपया अपने स्तरीय लेख, कहानी, कविता, समीक्षा, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत आदि सॉफ्ट या हार्ड रूप में अपनी फोटो एवं संक्षिप्त परिचय सहित निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :

301, राजभाषा प्रकोष्ठ, प्रशासन भवन,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067
दूरभाषः 91-11-26704023, मोबा- 7042783570
ईमेलः hindiunit@mail.jnu.ac.in अथवा sumersingh@mail.jnu.ac.in

महिला दिवस पर विशेष

गिरिजा देवी की गायकी

सुशांत शर्मा

कहनवा मानो हो राधा रानी

किसी भी साधना का चरम लक्ष्य क्या है? यदि इस प्रश्न का एक सर्वमान्य उत्तर दिया जाय तो कहा जा सकता है कि साधक का अपने साध्य का पर्याय हो जाना ही साधना का चरम है। किसी भाव के साथ किसी व्यक्ति की व्याप्ति इस तरह हो कि उस भाव के किसी उद्दीपक का ध्यान आते ही वह व्यक्ति आपके सम्मुख उपस्थित हो जाए यह मनुष्य की सार्थकता है। देह रूप से भाव रूप हो जाना, स्थूल से सूक्ष्म हो जाना, सविशेष से निर्विशेष हो जाना जीवन की चरम लोकोत्तर परिणति है। यह मुकाम हासिल करना तब संभव है जब संकल्प और साधना दोनों कल्याणकारी हों। सावन का महीना है, वर्षा ऋतु अपने कैशोर्य से तरुणावस्था को प्राप्त हो रही है। नहाई हुई प्रकृति, उमड़ते घुमड़ते बरसते बादल, मोक्ष की नगरी काशी का निवास और ऐसे में जब कभी धारासार वर्षा और कभी फुहारें पड रही हों तो हृदय का मयूर स्वयं नाच उठता है। कहते हैं मोर नाचते हुए तब अचानक रुक जाता है जब उसकी नज़र उसके अपने पैरों पर जाती है। ये बदरंग कुरूप टांगें उसके सारे उत्साह को समाप्त कर देती हैं। आज कुछ ऐसी ही दशा है। सावन में कजरी सुनते और गुनगुनाते जब एकबारगी ख्याल आता है कि "अप्पा जी" अब स्थूल रूप में संसार में नहीं रहीं तो सावन का सारा उत्साह अचानक रुक जाता है, स्थगित सा, स्तंभित सा। नाचता हुआ सावन जड़ हो जाता है, गाता हुआ सावन मूक होकर चीत्कार कर उठता है। विदुषी गिरिजा देवी जी के ऊपर आज पहली बार कुछ लिख रहा हूँ और अफ़सोस कि अब वे संसार में नहीं हैं।

गिरिजा देवी जी से पहला परिचय संगीत ने नहीं अपितु साहित्य ने कराया था। गिरिजा देवी जी पर "झूला" शीर्षक से एक संस्मरण शिवानी जी ने लिखा है। यह आलेख मुझे याद नहीं कब और कहाँ मैने पढ़ा था। गिरिजा देवी जी का गाया हुआ झूला 'सिया संग झूले बगिया में राम ललना' से जुड़े दो प्रसंगों को लेकर अद्भुत आलेख लिखा है शिवानी ने। इस आलेख से गिरिजा देवी जी का पद रूप में परिचय हो चुका था और अचानक कुछ वर्षों बाद दूरदर्शन के एक कार्यक्रम "आईडिया जलसा" में पहली बार गिरिजा देवी जी को गाते हुए सुना और देखा। ठीक वही झूला उन्हें बतौर फरमाइश दिया गया और अप्पा जी ने एक जादू से मेरे अंतःकरण को भर दिया "सिया संग झूले बगिया में राम ललना"। तब से लेकर आज तक गिरिजा देवी की गायकी हृदय में एक विशिष्ट स्थान पर अधिकारपूर्ण विराजमान है।

गिरिजा देवी की गायकी पर बात करने से पहले यह तय करना होगा कि गिरिजा देवी के किस आयाम पर बात की जाय। गायकी के विभिन्न आयाम हैं और उसमें भी सामने जब गिरिजा देवी हों तब तो यह तय कर लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो उठता है। गिरिजा देवी को सुनते हुए मैनें प्रायः असीम वैराग्य का अनुभव किया है और उसी मात्रा में चांचल्य का भी। जिस मात्रा में निर्गुण वैराग्य उसी परिमाण में सगुण शृंगार भी। जितना दुःख उतनी ही करुणा। और इनमें से प्रत्येक भाव अपने विशिष्टतम सौन्दर्य और अद्भुत कलात्मक स्वरुप में प्रकट होता है। अतः गिरिजा देवी जी की गायकी अति विशिष्ट है। मेरी समझ में गिरिजा देवी का गायन क्यों विशिष्ट गायन है इस पर बात करना ही श्रेयस्कर होगा। विशेष की परिभाषा देते हुए वामन कहते हैं "विशेषो गुणात्मा विशिष्टः"। अतः गिरिजा देवी के गायन के उस आयम पर बात करना समीचीन होगा कि उनके गायन में गुण और आत्म की कौन सी विशिष्टताएं विराजमान हैं। गायकी या संगीत यूं तो मनुष्य होने के सर्वसामान्य या मूलभूत लक्षणों में से एक माना गया। "साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशु..."। लेकिन यह सर्वसुलभ या सर्वसाधारण नहीं है यह भी ज्ञात है। कला मनुष्य के दैनिक कार्यों का एक विशेषीकृत अनुकरण है। यहाँ भाव और रस की व्याख्याओं में जाने का अवकाश नहीं फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि कला मनुष्य के चित्त की विश्रांति का एक अनन्य साधन है। इनमें भी संगीत अति महत्वपूर्ण है। हमारे चंचल चित्त को एक भावविशेष पर केन्द्रित कर स्थिर करने की जैसी शक्ति संगीत में है उतना किसी अन्य में नहीं।

बहरहाल... गिरिजा देवी जी पर बात करते हुए सबसे पहले उनके गायन का सबसे महत्वपूर्ण आयाम सामने आता है। वह है उनका स्वर। गिरिजा देवी जी के स्वर में किसी मद्धिम लय में बजने वाले साज की सी मुलायमियत नहीं अपितु शहनाई

की प्रखर टेर है। यह आवाज अपने आप में इतनी ठोस है कि आप को उसका सुनना उसे छूकर देखने जैसा प्रतीत होता है। अप्पा की आवाज किशोरी अमोनकर जैसी मसृण मुलायम आवाज नहीं बल्कि एक दीख पड़ती सी आवाज है। इसे सुनने के लिए आपको विशेष रूप से एकाग्र नहीं होना पड़ता। ऐसा प्रायः होता है कि हम किसी गायक या गायिका को सुन रहे हों हमें सुर समझ में आते हैं लेकिन शब्द समझ में नहीं आते। अप्पा जी की आवाज के साथ यह समस्या नहीं है। वह आवाज ऐसी है जो स्वतः वायु के आवरण को चीरती हुई आपके कानों में प्रवेश करती है। गिरिजा देवी का नया से नया श्रोता इस जादू को महसूस कर सकता है। यह सम्प्रेषण गिरिजा देवी के गायन का सम्मोहन बुनता है। आप सुरों की अच्छी पड़ताल न कर सकने के बावजूद शब्दों से बंध जाते हैं। आवाज ऐसी कि पहला ही स्वर लगा और लगा कि जैसे कोई सोता पहाड़ से फूट पड़ा हो।

उपशास्त्रीय गायन का अपना विशेष अंदाज़ है। यह विशिष्टता कई मायने में गायक कलाकार के लिए एक चुनौती भी है। सबसे पहली बात यह कि उपशास्त्रीय गायकी का लौकिक पक्ष इसपर हावी होता है जो राग रागिनी के स्थिर ठहराव और एक एक सुर की बढ़त के साथ अनंत दुहराव एवं भाव प्राकट्य का अवसर नहीं देता। पूर्णतः रागाश्रित न होने से इनमें आविर्भाव और तिरोभाव की गुंजायश नहीं। टप्पा, ठुमरी, कजरी, चैती, होरी आदि में विषय पूर्वनिर्धारित हैं। उनका स्वभाव भी निर्देशित है। अतः इस प्रकार की गायकी में राग को कम से कम समय में पूरी तरह खड़ा कर पाना और भाव का विस्तार काकु आदि से करना आवश्यक हो जाता है। ठुमरी की गायिकाओं में विशेष रूप से शोभा गुर्टू और गिरिजा देवी राग की स्थापना में अपना सानी नहीं रखतीं। आप गिरिजा देवी जी का "नैहर छूटल जाय" का रिकॉर्ड सुनें और इस पर विशेष ध्यान दें तो पाएंगे कि "बाबुल मोरा" कहने में ही भैरवी के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। अतः समय के मामले में गिरिजा देवी बहुत मितव्ययी गायिका हैं। लेकिन यह आवाज और स्वर की पकड़ ही अप्पा जी की गायकी का मूल हो ऐसा नहीं है।

दिल्ली के कमानी ऑडिटोरियम में ठुमरी महोत्सव में अप्पा जी की अंतिम प्रस्तुति मुझे याद है। ऑडिटोरियम भरा हुआ था और तनिक विलंब से आने के कारण मैं और मेरे जैसे सैकड़ों लोग बाहर उम्मीदें लगाये खड़े थे। खैर कुछ देर बाद व्यवस्था बनी और हम सब गये। अप्पा जी से पहले इन्द्राणी मुखर्जी और उनसे पूर्व मीता पंडित का गायन हुआ था। अप्पा जी मंच पर अवतरित हुईं और गाया कम समझाया ज्यादा। उनके आग्रह भरे स्वरों में बस एक ही गूँज थी कि सिर्फ सुरों पर आश्रित न रहो, 'हरकतों' से बाज आओ और साहित्य को समझो। "लागी बयरिया मैं सो गई हो ननदी, सैयां दुआरे से फिरि गए" में घर तक आकर लौटना और बाहर द्वारे से ही लौट जाने का जो वाचिक अभिनय अप्पा ने प्रस्तुत किया वह हैरान कर देने वाला था। ठीक ऐसे ही "चार जने मिल डोलिया उठाये" में अंतिम यात्रा की डोली उठाने का जो दृश्य प्रस्तुत हुआ उसका अनुभव अद्वितीय था। ऐसे हजारों उदाहरण अप्पा जी की गायकी में मिल जायेंगे। सवाल उठता है ऐसा करने के लिए कौन से ऐसे सांगीतिक तत्व हैं जिनका उपयोग अप्पा विशेष रूप से करती हैं। अगर हम इसका जबाब सिर्फ संगीत में ढूंढना चाहें तो हमें निराश होना पड़ेगा। क्योंकि अप्पा की गायकी में जितना संगीत है उतना ही साहित्य, उतना ही उनका अपना जीवन दर्शन, उतना ही हमारा सांस्कृतिक बोध।

अप्पा संगीत को चमत्कार का विषय नहीं मानतीं। इसलिए 'टप्पा' जैसे कठिन गायन को साधने के बावजूद उनकी ठुमरी में गिलगिला के अनावश्यक प्रयोग नहीं मिलते। सबसे पहले उनकी गायकी के साहित्यिक पक्ष को देखा जाना चाहिए। साहित्य हमारे जीवन से उत्पन्न होता है। साहित्य मनुष्य के मनुष्य से अन्तःरसंबंध की पहली इकाई भाषा का प्रतिफलन है। भाषा अर्थात भाव एवं विचार के सम्प्रेषण का वाचिक माध्यम। यही कार्य अप्पा जी अपनी गायकी में करती है। अतः भाषा के, व्याकरण के और साहित्य के बर्ताव उनकी गायकी में अक्सर मिलते हैं। उदाहरण के लिए "हरि बिन कारी बदरिया छाई" गाते समय जब 'कारी' पद का प्रयोग 'काली' के सन्दर्भ में करना होता है वे 'कारी' शब्द पर बलाघात देकर बदरिया पर पहुँचती हैं और कारी बदरिया के बीच विशेषण और विशेष्य भाव पैदा हो जाता है। लेकिन इसके श्लेष को प्रकट करते हुए जब 'कारी' का प्रयोग 'क्या री?" के अर्थ में करना होता है तब 'का' से 'री' के बीच में दो दानेदार बिलकुल सपाट गमक लेकर एक विवशता मिश्रित अनिच्छापूर्ण भर्त्सना का भाव बदरिया के प्रति जागृत कर देती हैं। ठीक यही काम "का री बदरिया बरसे" में करतीं हैं जिससे वह "कारी" कभी रंग का सन्दर्भ तो कभी एक खीझ भरी प्रश्नाकुलता के रूप में "का? री" में तब्दील हो जाता है।

यह व्याकरण निश्चय ही गायकी का नहीं है। सांगीतिक स्वराघात के साथ साथ शाब्दिक बलाघातों का प्रयोग उपशास्त्रीय गायकी में जैसा अप्पा जी ने किया है वैसा किसी अन्य ने शायद ही किया हो। अप्पा व्याकरण के साथ साथ शब्द की संवेदना को गायकी में बरत लेने की अपूर्व योग्यता रखतीं है। शब्दों की भंगिमाओं को जिस प्रकार सुरों में आरोह और अवरोह से वे चित्रित करती हैं वह कमाल का है। जैसे कविता या शब्द

को शिल्पी अपने शिल्प से मूर्ती, चित्रकार रंगों और रेखाओं से चित्र में ढाल देते हैं ठीक वैसे ही अप्पा जी शब्दों को सुरों में ढालने की कला का अद्भुत प्रदर्शन करती हैं। मुझे स्मरण है एक बार "दीवाना किये श्याम क्या जादू डाला" गाते समय अप्पा जी जब "उन गलियन में आना रे जाना" वाली पंक्ति गा रही थीं उस समय 'आना' कहते समय आने का और 'जाना' कहते समय जाने का जो भाव किया था, वहां उपस्थित सबने संगीत को मूर्तिमान होते देख लिया था।" कहनवा मानो हो राधा रानी" में जो मनुहार अप्पा जी ने भरा है और सुरों से "बिजली" चमकाने का जो अद्वितीय बिम्ब बनाया है वह संगीत की सीमा से बाहर की वस्तु है। एक एक श्रुति दाने की भांति इतनी जल्दी से वायुमंडल में उठ कर विलीन होते हैं कि भावक को लगता है एक बार और अगर यह सामने से घटित हो तो वह श्रुतियों को गिन लेगा। उपशास्त्रीय गायकी में भाव के साथ श्रुतियों का यह बरताव अन्यत्र दुर्लभ है। वैसे अगर देखा जाय तो बनारस घराने की गायकी में बोल के कहन पर विशेष बल दिया जाता है, साथ ही काकु की गायकी की परम्परा बहुत पुरानी है लेकिन फिर भी गिरिजा देवी में यह जिस परिमाण एवं रूप में प्राप्य है उसे सिर्फ काकु की परम्परागत शैली या घराने की विशिष्टता कह कर कम नहीं आंका जा सकता। गिरिजा देवी ने इन तत्वों को संगीत का उपांग मात्र न रखकर इन्हें उसकी आत्मा से सम्बद्ध किया है।

अप्पा जी की गायकी में एक जीवन दर्शन है। उस दर्शन में अध्यात्म अत्यधिक है। वैसे तो अप्पा जी की देहयष्टि और सादगीपूर्ण सुन्दरता स्वयं ही प्रेक्षागृह को साधनास्थल बनाने के लिए पर्याप्त है। कभी ध्यानमग्न सुर लगाती हुई अप्पा जी की तस्वीर देखिये, साक्षात् प्रतीत होता है जैसे एक ब्रह्मलीन साधना सदेह उपस्थित होकर सुर लगा रही है। अप्पा जी के चारो ओर की श्वेतिमा एक आभा मंडल रचती है और उनके सुर साक्षात् प्रणव से निकलती 'ओउम' की ध्वनि प्रतीत होते हैं। अध्यात्म और शुचिता के साथ साथ बालपन की सी भावुक और निर्दोष आनंदपूर्ण शांति अप्पा जी के जीवन में दिखाई पड़ता है। आजीवन उन्हें गुड्डे गुड़ियों को इकठ्ठा करने का शौक रहा है। उनकी शिष्याएं जब उनके विनोदी स्वभाव के बारे में बतातीं हैं तब साफ़ हो जाता है कि किसी मनोमालिन्य पूर्ण चरित्र में ये विशेषताएं नहीं समा सकतीं जो अप्पा में थीं। अप्पा जी के संगीत अध्यात्म के बारे में सबसे पहले यह बात जान लेना आवश्यक है कि उनका अध्यात्म बुद्ध की मूर्तियों में चित्रित अध्यात्म की तरह ज्ञान और निर्वाण की तलाश वाला नहीं है। यह ज्ञान का अध्यात्म न होकर भावाध्यात्म है। ठुमरी की गायकी में चार चीजें अति महत्वपूर्ण हैं– खटका, मुरकी, गिलगिला और पुकार। ये चार ठुमरी या उपशास्त्रीय विधाओं के अंग का निर्धारण करते हैं।

बनारस घराने की गायकी में अध्यात्म और चांचल्य दोनों है परन्तु गिरिजा देवी का प्राप्य अध्यात्म है। इसके लिए गायन के पुकार अंग को वे विशेष रूप से ग्रहण करती हुई प्रतीत होती हैं। शोभा गुर्टू जी की गायकी से गिरिजा देवी की ठुमरी गायकी इसी बिंदु पर आकर भिन्न हो जाती है। शोभा गुर्टू जी ठुमरी की परम्परागत शैली की सबसे बड़ी गायिका हैं यह निःसंदेह कहा जा सकता है लेकिन गिरिजा देवी जी ने ठुमरी के क्षेत्र में एक प्रस्थान रचा है। यह प्रस्थान है शृंगार प्रधान ठुमरी को भक्ति और अध्यात्म प्रधान बना देना। ऐसा नहीं है कि शोभा गुर्टू जी में भक्ति या अध्यात्म नहीं है लेकिन शोभा गुर्टू जी की गायकी का अध्यात्म वर्ण्य विषय या पद में वर्णित भाव पर पूर्णतः आश्रित है। जिन पदों में अध्यात्म है उसकी प्रस्तुति वे उसी ढंग से करती हैं और तब उसमें लेशमात्र भी शृंगार झाँकने नहीं आता। उदाहरण के लिए "नैया पड़ी मंजधार" सुना जा सकता है। गिरिजा देवी जी की गायकी में बंदिश में निबद्ध विषय गायन की सीमा बनकर नहीं आता। शृंगार के पद को अध्यात्म का रंग देने के लिए अप्पा जी साहसिक प्रयोग करती हैं।

इन प्रयोगों को भी वे संगीत और साहित्य दोनों के स्तर पर बरतती हैं। सुधी पाठकों को ज्ञात होगा कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र विरचित प्रसिद्ध ठुमरी मूलतः "कहनवा मानो हो दिलजानी" के रूप में लिखी गई थी लेकिन अप्पा जी ने 'दिलजानी' को 'राधारानी' किया और लोकप्रिय बनाया। यूट्यूब पर उपलब्ध तमाम रिकार्ड्स में एक रिकॉर्ड है जिसमें अप्पा जी ने शोभा गुर्टू जी के साथ प्रसिद्ध ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूटल जाय" गाया है। उसमें अप्पा जी की प्रयोगधर्मिता साफ़ दिखाई दे जाती है और सारा अंतर स्पष्ट हो जाता है। "नैहर छूटल जाय" नबाब वाजिद अली शाह के अंत समय की रचना मानी जाती है। कहा जाता है कि जब वाजिद अली शाह लखनऊ से निष्काषित होकर कलकत्ते जा रहे थे तब यह ठुमरी बनाई थी उन्होंने। इस भाव की पुष्टि करते हुए इस ठुमरी को के.एल. सहगल ने 'स्ट्रीट सिंगर' फिल्म में गाया है। के.एल. सहगल की आवाज में जो करुणा और दैन्य है वह वाजिद अली शाह के दुःख को प्रकट करता है। लेकिन इसी को जब किशोरी अमोनकर जी ने गया तब वह एक स्त्री की पीड़ा मालूम होती है। विदा हो कर मायके से ससुराल जाती हुई विस्थापित हो रही स्त्री की पीड़ा।

इस ठुमरी को अध्यात्म का रंग दिया पूज्य पंडित भीमसेन जोशी जी ने। उनकी आवाज में यह ठुमरी आत्मा का परमात्मा से बिछोह मालूम होती है। विदुषी गिरिजा देवी की इसके गायन

को लेकर अपार ख्याति हुई। इसका कारण अध्यात्म ही है लेकिन भीमसेन जी वाले अध्यात्म से विलग है। पंडित जी का अध्यात्म ज्ञान अध्यात्म है जबकि गिरिजा देवी का भावाध्यात्म। पंडित जी के गायन में से अध्यात्म का सूक्ष्म तत्व ही दिखाई देता है उसका लौकिक पक्ष बिलकुल छूट सा जाता है। गिरिजा देवी ने इसके परम अध्यात्म (आत्मा और परमात्मा) के साथ लौकिक अध्यात्म (संसार से विदा होकर किसी अन्य लोक में जाना) को जोड़ा है। 'डोली उठाने' से लेकर 'अपना बेगाना के छूटने' की जो चित्रात्मक प्रस्तुति गिरिजा देवी करती हैं वह विशेष है। शायद यही कारण है कि जैसे यह ठुमरी अप्पा जी के व्यक्तित्व का एक अंग बन पाई वैसा किसी और के साथ संभव नहीं हो सका।

अप्पा जी के गायन में भारतीय लोक की परम्परा के दिग्दर्शन होते हैं। अव्वल तो वे स्वयं एक सांस्कृतिक विरासत हैं। एक बार अप्पा जी ने पंडित 'नानक मिश्र' (राजन साजन मिश्र के प्रपितामह) द्वारा लिखित बंदिश "कारे बदरा रे तू तो जुलुम किया" सुनाया था और अपनी सांस्कृतिक विरासत को सहेज कर आगे बढ़ने की बात कही। गिरिजा देवी की गायकी में पीढ़ियों से संचित अनुभवों और बारीकियों का विशाल भंडार प्राप्त होता है। उनका बनारसीपन और चैती, कजरी आदि की लौकिक संवेदना से गहरा परिचय उनकी गायकी का प्राण है। अप्पा जी किताब से पढ़कर और किसी से सुनकर नहीं अपितु परम्परा में गहराई से जुड़कर उसे जानती और समझती हैं। उनकी गायकी में जितनी समझ संगीत की है उससे कम समझ संस्कृति की नहीं। अपने अंतिम दिनों में उन्हें जिसने भी प्रस्तुति देते हुए देखा उसे याद होगा कि अप्पा जी किस तरह परम्परा को सहेजने और उसे बचाकर आगे ले जाने के लिए गुज़ारिश करती थीं। संगीत को परम्परा मात्र नहीं अपनी लोक परम्पराओं को और उनमें संचित साहित्य को, लोक की संवेदनाओं को संरक्षित करने के लिए उनके आग्रह पूर्ण स्वर आज भी कानों में गूँज रहे हैं। वे अपनी सामान धर्माओं से जब फैशन परस्ती और चमत्कार वाद को छोड़ने का मानो आग्रह करती हुई कहती हैं, "कहनवा मानो हो राधारानी" तो इसमें भी अपनी संस्कृति को बचाने और सहेजने का भाव ही दिखाई देता है।

***

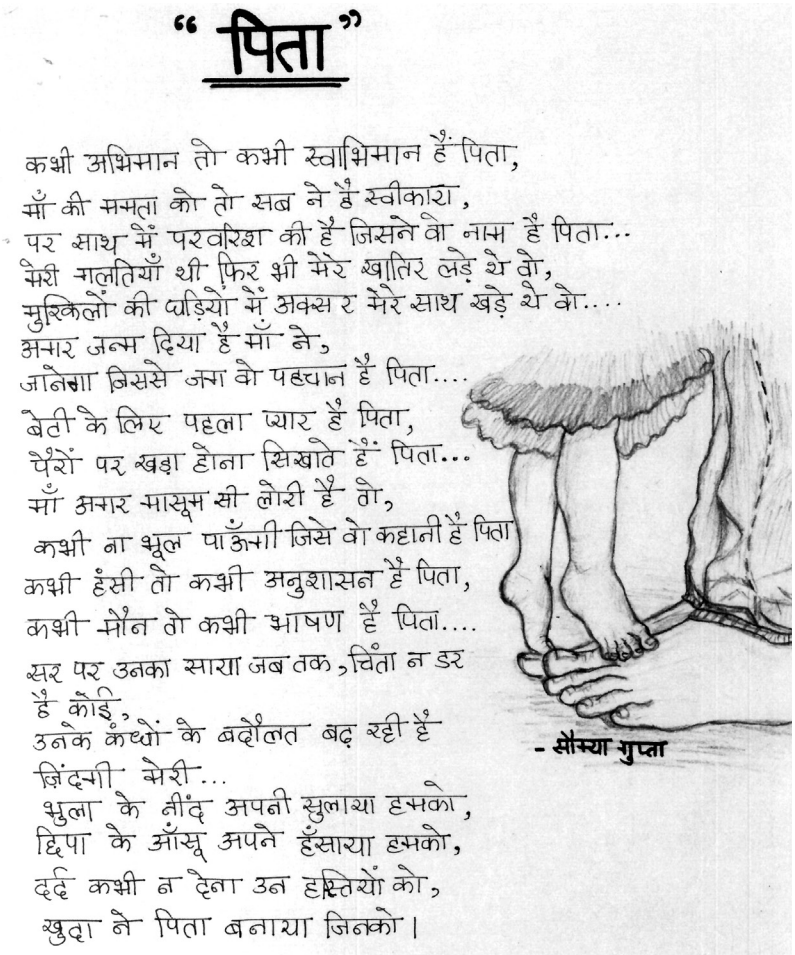

कृष्णा सोबतीः एक मुलाकात

प्रो. गरिमा श्रीवास्तव

लगभग 94 वर्ष का एक लम्बा सफ़र तय कर हिंदी साहित्य को अद्भुत ढंग से समृद्ध करके कृष्णा जी इस वर्ष के शुरू में ही जा चुकी हैं। बच गई हैं उनके पीछे से ढेरों किताबें और उन किताबों में बिखरे विपुल पात्र जो बहते हुए जीवन की गति में हंसाते-रुलाते रहेंगे और याद दिलाएंगे कि हाड़-मांस, अस्थि-मज्जा की बनी एक औरत ने अपने एकांत में, जीवन का गीत गाते हुए न जाने कितनी कहानियां रचीं, उपन्यास लिखे और जीवन का भरपूर प्याला पीकर अपनी चरम यात्रा को रुखसत हुई। इन्हीं कृष्णा जी से दो वर्ष पहले की एक मुलाकात का ज़िक्र अपने पाठकों से कर रही हूँ।

'ऐ लड़की' में कृष्णा जी की पात्र अम्मू कहती है। "अपने आप में आप होना परम है। 'खुद पाए हुए अनुभव श्रेष्ठ हैं जिसका विकल्प और कोई अनुभव हो ही नहीं सकता।" कृष्णा जी लिखती हैं। 'मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज़ देगा, मैं उसे जवाब दूँगी— "मेरी पुकार का ऐसा ही जवाब दिया था एक सुदीर्घ रचनात्मक जीवन जीने वाली और आज भी खूब सकारात्मक ऊर्जा से भरी हुई कृष्णा जी ने।

शरीर से भले वृद्ध हों लेकिन विचार के स्तर पर युवा हैं, खूब जमकर लगातार लिख रही हैं, भावुकता, उदारता और बौद्धिकता का अद्भुत संगम-बात बात में ज़ोर का कहकहा, जुबान से धाराप्रवाह फिसलती फ़ारसी, पंजाबी और अंग्रेजी, ज़िन्दगी और जिंदादिली, अद्भुत जिजीविषा...हंसकर कह पड़ीं मुझसे 'मैंने तो इसे (सहायिका को) फोन नं. लिखकर दे रखे हैं, कि किसी सुबह आवाज़ देने पर मैं उस पुकार से परे जा निकलूँ तब ...हाँ और सुनिए गरिमा! जी चाहता है वहां ऊपर अल्ला मियां से कहकर वनरूम फ़्लैट आरक्षित करवा लूं.. 'मैं हतप्रभ हूँ और वे हैं कि हँस रही हैं। नौ दशकों का सफ़र विश्रांत हो रहा है, इसे समझकर भी मन चाहता है कि यदि कोई ऊपर हो और मेरी बात सुने तो उससे अर्ज़ करूं कि इस सोहबत को भरपूर स्वास्थ्य दे कि और कुछ वर्ष वे लिख सकें, ऐसा कुछ जिससे हम ऐसे पाठकों में शुमार हों जिन्होंने ज़िंदगी को अपनी शर्तों पर जीने की तमीज़ सीखी है, उन्हें पढ़कर। वे इन दिनों गुजरात पर लिख रही हैं.. बिना रुके, अपनी तकलीफों के पुलिंदों को छिपाए हँसकर मिलजुल रही हैं। कहती हैं— दिल्ली में लोग आपस में मिलने-जुलने का रिवाज़ कम ही रखते हैं। कैसे कहूँ उन्हें कि अपरिचय और कृत्रिमता ही आज किसी भी शहर की रवायत बन चुके हैं। गाँवों में भी धीरे-धीरे ये बीमारी पंहुच गयी है। कर्ण-गुहा में मोबाईल का प्लग फंसाए हम दूसरी दुनिया के निवासी हैं, जहाँ दूसरे के दुःख सुख, हँसी-कराह की ध्वनियाँ वर्जित हैं, अजनबियत भी आत्मरक्षा का एक हथियार है। लेकिन फिर हम विरासत पाएंगे किससे, जीवन को समझने की अनुभव संपन्न दृष्टि दे सकने वाले लोग अपनी-अपनी यात्राओं पर चले जायेंगे, और हम सभाएं कर उन्हें स्मरण कर कर्तव्य कर लिया करेंगे।

आज दिन के चार-पांच घंटे एक अरसे के बाद उनके साथ गुज़ारे ..या यों कहूँ जीए। सन 1994 में एम् फ़िल की उपाधि के लिए उनकी किताब "ऐ लड़की' के चुनाव का सुझाव प्रो. नित्यानंद तिवारी ने दिया था। संकोच और कम उम्र के तकाज़े ने कृष्णा जी से एक निश्चित दूरी बनाये रखी। इस बार दिल्ली आने पर जब उनका फोन आया कि ज्वाइन कर लिया हो तो मिलने आ जाओ.. हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय ने उन्हें जब डी.लिट् की मानद उपाधि (Honoris Causa) दी तो विश्वविद्यालय स्वयं सम्मानित हुआ और शायद हिंदी पट्टी के विश्वविद्यालयों में भी हिंदी की इतनी बड़ी रचनाकार को Honoris Causa दिलवा देना इतना सहज भी नहीं होता। हमारे विभाग में तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो. रवि रंजन और सहयोगियों ने इस प्रस्ताव का ज़ोरदार समर्थन किया और अंततः कई स्तरों से गुजरने और शैक्षिक परिषद् की हंगामेदार बहस के बाद स्वीकृति मिल ही गयी, विभाग में सब एकमत थे कि दूसरे के सम्मान से हम खुद सम्मानित होते हैं। 2012 के दीक्षांत समारोह में कृष्णा जी का स्वयं आकर सम्मान लेना स्वास्थ्य सम्बन्धी दिक्कतों के कारण हो नहीं पाया, उनकी जगह अशोक वाजपेयी (जिन्हें है के.वि.वि. ने सम्मानित किया था) ने सम्मान उन तक पहुँचाया, लेकिन हम हमेशा फोन पर लम्बी चर्चाएँ करते रहे। जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र के सहयोगियों से मैंने कृष्णा सोबती से अपनी भावी मुलाकात का ज़िक्र किया था दिन में, और रात को अरावली के कमरे में, जहाँ हर घंटे यूँ गिना करती कि लो अब बोईंग विमान उड़ान के पहले रनवे पर बीस मिनट घिसटा, अब दो-चालीस हुए और विशाल भारी पंखों, जगमगाती बत्तियों वाले विमान को जेएनयू पर मंडराने के अलावा कुछ सूझ ही नहीं रहा, लाईन क्लियर नहीं है, जाग पड़ी

रहती है— अनिद्रा और निद्रा के बीच सपने में यों भासा ज्यों वे व्हील चेयर पर बैठी हों, बड़े फ्रेम का चश्मा पहने, काले दुपट्टे से सिर और गले को लपेटे, बीच में गौरवर्ण तेजस्वी मुख दीप्त हो और मैं उन्हें दिखा रही होऊं जेएनयू के पेड़-पौधे, मानुस, नया इंडिया काफी हॉउस, गंगा ढाबा, पार्थसारथी रॉक, खूब पढ़ाकू छात्रों से भरी लाइब्रेरी, हवाई चप्पल पहने तेजोद्दीप्त आवेगमय विद्यार्थियों का झुण्ड, अपने में ही गुम सर झुकाए जाता कोई अध्यापक, नीलगायों के झुण्ड, मोरों के रंगीन पंख और देर रात नाच गान करते कई छात्र। वे देखती हों हर चीज़ को कौतुक से, मेरे उत्साह से उत्साहित सी, ज्यों पहली बार स्वच्छ आकाश में पेड़ों के बीच से झांकते तारों की बोली-बानी सुनती हों..

कृष्णा जी उन लोगों में शुमार हैं जो मनुष्य को जाति, वर्ग और जेंडर के कठघरे में बाँटने से पहले उसके आत्यंतिक सत्य को महत्व देती हैं— शबारी उपरे मानुष सत्य ...जेएनयू में ज्वाइन करने के बाद मैंने उनसे कहा कि सर्दियों की छुट्टियों के बाद आपसे मिलती हूँ, लेकिन उनका आग्रह था अभी मिलो न ..इस अभी मिल लेने में कुछ था जो कहा नहीं गया पर महसूसा गया— वह था, कल किसने देखा है? मुझसे हाथ मिलाकर बोलती हैं ..आप तो तीसरी पीढ़ी की हैं। पैदाईशी महानगरीय होना और छोटी जगह से आकर यहाँ बस जाने के फर्क को देर तक समझाती हैं। मैंने हौले से उनके झुर्रियों भरे गोरे हाथ को छू लिया है, दो उँगलियों में हीरे की अंगूठियाँ हैं, कलाई में सोने का एक सादा सा कड़ा, त्वचा झूल गयी है, नीली ..हरी नसें हड्डियों को मजबूती से थामे हुए हैं, उँगलियाँ कलात्मक हैं ..मेरी उँगलियाँ देख रही हैं वे भी गौर से ..चश्मे के भीतर एक जोड़ी चुस्त और चौकन्नी आँखें हैं, सुनने बोलने में कहीं कोई दिक्कत नहीं, बस कहती हैं कि अब थक जाया करती हूँ, देर रात तक जाग कर काम करना उन्हें पहले से ही सुहाता है, इसलिए सुबह देर से सोकर उठती हैं "..आपको ग्यारह बजे आना था इसलिए आज जल्दी उठ गयी"— और बच्चों की तरह खिलखिला उठती हैं। सर को उन्होंने काले ऊनी टोपे से ढँक रखा है, मैंने थोड़ा इठलाकर कहा है कि उनके सन से केश देखना चाहती हूँ, वे बिलकुल आत्मीय पुरनिया की तरह टोपी उतार देती हैं, रबीन्द्रनाथ ठाकुर की श्वेत केश राशि याद आ रही है। अब वे कुछ ज्यादा ही कमजोर हो गयी हैं ..सालों पहले की कृष्णा सोबती जिनकी विस्तृत आडम्बरपूर्ण 'हाई-टी' का लुत्फ़ बहुत से साहित्यकार, अतिथि, परिचित उठाया करते थे, उसकी रौनक मंद भले हो गयी हो, बुझी नहीं है। सहायिका ने इशारा समझकर चाय का एक लम्बा सरंजाम रख दिया है। मैंने नोटिस किया है कि वे बहुत कम खा रही हैं ..न के बराबर, लेकिन निरंतर इस बात का ख्याल रख रही हैं कि मेहमान नवाज़ी में कुछ कमी न रह जाए। ये वो पीढ़ी है जिसकी जड़ें भारतीय सभ्यता और संस्कार में गहरे तक जमी हैं और पाश्चात्य संस्कृति से पुष्पित-पल्लवित हुई हैं।

कृष्णा जी अपने बचपन के दिनों को याद कर रही हैं। शरीर यहीं सोफे पर मेरे साथ बैठा रह गया है और आँखें की पुतलियाँ थोड़ी सिकुड़ गयी हैं और दृष्टि स्थिर, जा पहुंची है अतीत के सुदूर कोने-अंतरों को देखने 'हमारे पिता रात को रोशनी बुझ जाने पर घर के बीचोंबीच बैठकर लालटेन की मंद रोशनी में कोई साहित्यिक टुकड़ा पढ़ा करते, हम सब अपने अपने बिस्तरों पर लेटे, घर में गूंजती उस गुरु गंभीर मंद्र आवाज़ को सुना करते, भाषा की ध्वनियाँ और उसका शब्द भंडार अजीब रहस्यमय ढंग से हमारे कानों के जरिये सीधे दिल में उतर जाया करता.. भाषा के संस्कार हमने अपने माता-पिता से पाए, और अनुशासन भी।'

मैंने उन्हें कुरेदने की कोशिश की है— आपकी पहली रचना? वे बोल उठीं— 'चन्ना' शीर्षक मैंने पहला उपन्यास लिखा था, जिसे छपाया नहीं क्योंकि इलाहाबाद के किन्हीं लल्लूलाल जी ने कम्पोजिंग में ही पंजाबी के लोकशब्दों को अपनी तरफ से सुधारकर शुद्ध हिंदी के शब्द भंडार में शामिल करने योग्य बना लिया था, मसलन शाहनी को उन्होंने सुधारकर शाह-पत्नी कर दिया, अपने बचपन की बोली— बानी, रवानेदार पंजाबी मुहावरों को खडी बोली का चुस्त पहनावा पहनाना मुझे असहम हो गया, और उसे प्रकाशित करवाने का विचार त्याग दिया। मैंने उनसे कहा है कि मुझे 'ज़िंदगीनामा' के अगले खंड की प्रतीक्षा है, वे मुस्कुराती हैं और मेरी आँखों के सामने बड़े शाहजी के सिरहाने शबद उचारती राब्याँ की चुनरी की कोर झिलमिला गयी है। क्या आप ही हैं राब्याँ? आप कब कहाँ मिलीं राब्याँ से..जिसकी आवाज का दर्द, दीनो-जहान में मुहब्बत का दर्द हर उस पाठक के दिल में टीस-सा जिंदा है जो पैडे मारती राब्याँ को शाहजी के पीछे पीछे दरया में उतरता देख चुका है, जाति-बिरादरी, उम्र, शरीर के परे शाहजी की राब्याँ के लिए दीवानगी देख चुका है, ताक पर रखे दीये की लौ-सी झिलमिला रही हैं कृष्णा जी की आँखें ..न न राब्याँ की आँखें। जिस दिन वह लाली शाह की पुकार को अनसुना करके दरिया में उतर गयी थी बेआवाज़ ..हौले ..चुपचाप ..सारी हवेली की दौलत को पीछे छोड़कर चली गयी थी उसी दरया में ..जहाँ शाहजी गए थे ..तबसे ढूंढ रही हूँ मैं उस राब्याँ को ..मिली नहीं कभी मिलेगी भी नहीं ..'सिक्का बदल गया' की शाहनी ट्रक पर चढ़ा दी गयी है, खेत, दौलत, सम्बन्ध, नाते, शाहजी की स्मृतियाँ सब कुछ पीछे छूट रहा है, ट्रक की गति उस शाहनी को दूर ले जा रही है मुझसे ..क्या आप ही हैं शाहनी ..राब्याँ ..कृष्णा जी की आँखें

झिलमिला रही हैं या मेरी आँखों का पानी ही धुंधला कर रहा है मेरी नज़र को ..जी कह रहा है कहूँ– 'मत जाओ राब्याँ, कहीं मत जाओ, यहीं सबद उचारो, तुम्हारे शाहजी नहीं लेकिन अब वक्त बदला है तुम्हारी ज़रूरत है बहुतों को ..मत जाओ शाहनी अपने खेत-खलिहानों को छोड़कर ..ये नन्हें-मुन्ने सरसों के पौधे सर्द हवा में बाहें फैलाकर तुम्हें बुलाते हैं ..रुक तो जाओ ..यूँ भी जाता है कोई..रुको न अम्मू! तुमने कहा था– लड़की! परलोक होता है दूसरों का लोक ..परायों का ..वहां का रास्ता क्यों देखना ..मुझ जैसी कई लड़कियां होंगी जिन्हें ज़रूरत होगी तुम्हारे अनुभवों से बहुत कुछ सीखने की, अभी अपनी तैयारी स्थगित रखो शाहनी....।

जिन्होंने कभी किसी को आवाज़ नहीं दी, बस पुकार का उत्तर भर दिया, वे जीवन भर स्वाभिमान से कभी समझौते न करने वाली रचनाकार के रूप में जानी जाती रहीं। जिस शहर की आबोहवा में हर दूसरा रचनाकार पुरस्कृत हो, या होने के लिए लालायित हो, उसी शहर में आपने बड़े बड़े पुरस्कारों को दरवाजे से लौटा दिया– "इसका कोई अफ़सोस नहीं है मुझे' स्वाभिमान और अपनी शर्तों पर जीने के लिए कहीं हाथ नहीं फैलाया, 26 साल की कानूनी लडाई लड़ी और उसी में घर बिक गया– ये बताते हुए चेहरे की मुस्कान धूमिल! नहीं...नहीं कहाँ। दुःख या अफ़सोस के बादल का कोई नन्हा टुकड़ा भी नहीं, निरभ्र अपरिमित विस्तार...छोटे शिमला की यादें, विभाजन की यादें..जो मन में आये कर डालना चाहिए, न कोई दोस्त न कोई दुश्मन..मैं अपना दिल खुद ही लगाती हूँ। लोग कहते हैं आप अपने निज के बारे में कुछ नहीं बतातीं। कभी किसी ने मुझसे पूछा कि सुना था कभी आपका एक प्रेम प्रसंग था तो मैंने जवाब दिया– सुनिए मेरी इतनी बुरी हालत कभी नहीं थी, जहाँ सिर्फ एक ही प्रेम-प्रसंग होता' इसके साथ ही हमारी समवेत हँसी उम्र की दीवारों को ढहाते हुए कलकल नदी सी बह उठती है जिसकी छलछलाहट बहुत दिनों तक स्मृति का मंद स्मित बिखेरती रहेगी।

इन दिनों 'दिलोदानिश' का पाठ हो रहा है जामिया मिल्लिया में, शाम को कृष्णा जी को वहीं जाना है। मेरे पास समय नहीं कि अपनी प्रिय रचनाकार के इस उपन्यास– पाठ में शामिल हो सकूँ। लौटने का वक्त हो चला है– 'सिक्का बदल गया' की शाहनी ने अपने गहने ज़ेवर कुछ नहीं साथ रखे थे, चल दी थी शरणार्थी कैम्प में दूसरों के साथ कभी न लौटने के लिए, संग कुछ ले गयी ही नहीं ..कौन ले जा पाता है इस दुनिया से चीज़-बस्त, अपनी सांस जब तक साथ दे तब तक ही है मैं, मेरा, अपना, हमारा ज्यों ही औचक बुलावा आया उसी समय राब्याँ चुपचाप दरया की लहरों में गुम..बादलों के घेरों ने घेर लिया है ..चुपचाप अपने रास्ते चल देना है ..किसी से गिला-शिकवा क्यों ..जीवन जितना मिला, जैसा मिला, भरपूर जिया, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया..हाँ जब तक रहे सुकून से रहे, अच्छा खाया, अच्छा पहना, गरारे से लेकर शरारे तक, अपनी धज सबसे अलग रखी, किसी को रुचे तो ठीक, न रुचे तो राम ..राम...मुझे विदाई जैसा कुछ दे रही हैं वो ..एक सुन्दर काला कुरता, जिस पर चांदनी के मोर बने हुए हैं, मानों कहती हों पहनना तो याद करना मुझे। झिलमिली आँखों में बालबंगरा के दालान में सिर पर हाथ रखे छोटे गोल मुख वाली नानी की तस्वीर है, जो दिल्ली लौटने के दिन कहती थी 'फेर लौट के अइह, गर्मी के छुट्टी में'– विदा लेते कलेजा मुंह को आता था, सोचा था नौकरी करुँगी तो नानी की देखभाल करुँगी। नानी उससे पहले चली गयी, और फिर ननिहाल के नाम पर सबकुछ बच रहा नानी के सिवाय।

कृष्णा जी मुझे विदा दे रही हैं। उन्हीं की लिखी पंक्तियाँ याद आ रही हैं, जिन्हें दोहराने की इज़ाज़त बड़े संकोच से मैंने मांग ली है– "लड़की, प्याला बना ही इसलिए कि उठाओ और पी जाओ। जब तक पी सकते हो पीते रहो" ...जीवन हिरण है हिरण। कस्तूरी मृग। इस क्षणभंगुर जगत में अपनी महक फैला यह जा और वह जा। "सुनते ही वे आनंद से ताली बजा कर हंसने लगी हैं– तुमको याद है इतना सब? मेरा जवाब है– मुझे तो आपका पूरा उपन्यास याद है। कृष्णा जी ने बाएं पासंग पर रखी एक छोटी किताब से एक टुकड़ा निकाला है और कहती हैं– इसे बोल कर पढ़िए ..मुझे मालूम है कि ये टुकड़ा कौन सा है, वे मेरा उच्चारण सुनना चाहती हैं। नफीस उर्दू की नज़्म मन को ताज़ा कर गयी है....

ठण्ड बढ़ने से पहले जेएनयू पहुंचना है ..दीवार पर शिवनाथ जी की मंदमुस्कान टंगी है, कोई माला नहीं..जो साथी यहीं हैं पुराने कांच के गिलासों में, बुद्ध की धूलभरी प्रतिमा में, विवर्ण हो चुके गाढे रंग के सोफे कवरों में, सीले-सीले से रेशमी पर्दों में, रंग और पुताई की फरियाद करती दीवारों और छतों में, कभी रोशन करते कांच के झाड़-फानूसों में, उस की तस्वीर पर माला क्यों। उसकी उपस्थिति तो उत्कीर्ण है पांचवीं मंजिल के फ़्लैट के दरवाज़े पर स्टील की प्लेट पर–

झेलम और
चनाब
बहते रहेंगे
इसी धरती पर।
लहराते रहेंगे
खुली-डुली
हवाओं के झोंके
इसी धरती पर
इसी तरह।
हर रुत-मौसम में
इसी तरह
बिलकुल इसी तरह
सिर्फ़
हम यहाँ नहीं होंगे।
नहीं होंगे,
फिर कभी नहीं होंगे,
नहीं। (जिंदगीनामा)

***

उस मोड़ पर....

प्रो. योगेश भटनागर

मुशताक की आवाज़ मैं बचपन से सुनता आ रहा हूँ। उसकी आवाज़ में अजीब सी खनक है जो अपने आप आपको उसकी तरफ आकर्षित करती है। वह हमारा रद्दी और भंगार लेने वाला है। मेरे डैड को वह अंकल कह कर पुकारता है। और मम्मी को दादी। पता नहीं उसने यह रिश्ता कैसे बनाया। डैडी कभी कभी मम्मी से मजाक में कहा करते हैं, "लो पला-पलाया पोता आ गया।" मम्मी भी कहतीं, "क्या रिश्ता बनाया है मरे ने, तुम्हारा भतीजा और मेरा पोता!" "हाँ, इन्सान अक्सर अपने आप मन के रिश्ते बना लेते हैं।" डैड कहते। पर हर बार मम्मी को छेड़ भी दिया करते, "तुम्हारे सफेद बालों को (मम्मी के बाल कुछ जल्दी ही सफेद हो गये थे) देखकर वह कहीं तुम्हें मेरी कुछ और तो नहीं समझता?!" मम्मी कहती "आपके गंज की तरफ नहीं देखता?!" यह मज़ाक हर बार हुआ करता। मुशताक हर दो महीने बाद आया करता था। आकर सीढ़ियों में चढ़ते हुए चिल्लाता "गोलू भैया दरवाज़ा खोलिए।" मैं भी भागकर दरवाजा खोलता और कहता, "चचा जान दरवाजा तो खुला हुआ ही था। आप यूँ ही शोर मचाते हैं सीढ़ियों में से ही।" "अरे भई, दादी और अंकल को परेशान नहीं करना चाहता इसलिये आपको पुकार लेता हूँ।" मुशताक उम्र में मुझसे कोई दस बाहर बरस बड़ा होगा। बहुत ही खूबसूरत था। उसके घने काले बाल, उल्टे कंधे से की गयी छोटी सी दाढ़ी और गोल टोपी पहने वह गबरूजवान लगता था। एक बार मैंने पूछा "चचा जान आपकी उम्र कितनी होगी?" कहा, "उम्र जानकर क्या करोगे? नूर मेरी सबसे बड़ी बेटी चौदह साल की है। शादी के वक्त रजिया तेरह चौदह की रही होगी। नूर एक साल बाद ही सर्दियों में पैदा हो गयी थी।" मतलब मेरे से तीन साल बड़ी है नूर, मैं सोच रहा था। मुशताक कई बरसों से रद्दी और भंगार एक ही दाम में खरीद रहा था। मम्मी जब भी कहतीं कि अरे मुशताक तेरी रद्दी कभी महँगी सस्ती नहीं होती? यहाँ तो हर रोज़ चीज़ों के दाम बढ़ रहे हैं। आटा, दाल, चावल, खाने का तेल, घी सभी के दाम बढ़ रहे हैं पर तेरी रद्दी के दाम एक ही हैं।" "दादी जी, आपका यह पोता आपका नुकसान तो नहीं कर सकता न।" मम्मी चुप हो जातीं। यह सिलसिला साल दर साल चल रहा है और यही बातें यही जवाब हर दो महीने बाद।

एक दिन अचानक घर की घंटी बजी। सुबह के ग्यारह बजे थे, कौन हो सकता है? मैं सोचते-सोचते दरवाजे पर गया और दरवाजा खोला। "चचाजान आप?!!" आज आपने सीढ़ियों पर से नहीं पुकारा?!!" "नहीं, गोलू, आज रद्दी लेने नहीं, मिलने आया हूँ कहते कहते अंदर आ गया। मम्मी और डैडी भी बाहर ड्राईंग रूम में आ गये। उन्हें देखते ही मुशताक ने उनके पैर छू लिये। "दादी, आपसे ईद मिलने आया हूँ।" मीठी सेवइयों का डिब्बा आगे बढ़ाते हुए कहा। मम्मी ने कहा बैठ-बैठ, अच्छा हो गया। तू ईद मिलने आया। इससे पहले कभी क्यों नहीं आया?" "बस सोचता रहता था पर हिम्मत नहीं जुटा पाया।" "दादी कहता है और हिम्मत नहीं जुटा पाया।"

"आप तो जानती हैं न कि आजकल माहौल कितना जहरीला हो गया है, ज़मीन पर बैठते हुए मुशताक ने कहा।

"अरे ऊपर बैठ यहाँ कुर्सी पर", मम्मी ने कहा। "नहीं, नहीं, दादी यहीं ठीक हूँ।"

उस दिन पता लगा कि मुशताक की तीन लड़कियाँ हैं : नूर, नसीबन और सुल्ताना। मुशताक ने बताया : "नूर इस बार बारहवीं का इम्तिहान दे रही है। नसीबन दसवीं का और सुल्ताना सातवीं का। रज़िया मुहल्ले के पाँच घरों में चौका बर्तन और झाड़ू पोंछा करती है। बच्चियों के स्कूल जाने के बाद वह सुबह नौ बजे काम पर जाती है और तीन बजे तक आ जाती है। एक घर में दोपहर का खाना भी बनाती है तो वहीं कुछ खा लेती है। बस इसी तरह जिन्दगी की रेलगाड़ी चल रही है।"

"अच्छा तो है। बेटियाँ पढ़ रही हैं। वे जितना पढ़ना चाहें उतना पढ़ाना।" कहते हुई उठी और अंदर से पाँच सौ एक रुपये लाकर मुशताक के हाथ में रख दिये, कहा "यह तुम सबकी ईदी है।" मुशताक उठा और मम्मी के पैर छूकर चला गया।

मैं सोचता रहा कि सतरह साल की नूर कैसी होगी? चचाजान इतने खूबसूरत हैं ज़रूर वह भी बहुत ही खूबसूरत होगी। उसके लम्बे घने घुंघराले बाल होंगे। बड़ी-बड़ी आँखें होंगी, नाक चचाजान जैसी लम्बी और तीखी होगी, होंठ बारीक होंगे और छातियाँ गोल सख्त और बड़ी होंगी, चलती होगी तो लय में हिलती होंगी, उसकी छातियाँ– यही तस्वीर मेरे जहन में नूर की छप गयी। जब भी मुशताक रद्दी लेने आता तो नूर की यही तस्वीर मेरे जहन में कौंध जाती। मैं अब उससे मिलने के लिये बैचैन रहने लगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि

कैसे नूर से मिलें। जितना उसके बारे में सोचता उतनी ही बेचैनी बढ़ने लगती। इस बेचैनी का नतीजा यह हुआ कि उस साल मैं नौवीं क्लास में फेल हो गया। हैड मास्टर ने डैडी को बुलाकर कहा कि आपका बेटा गणित में कमजोर है। हिंदी भी गलत लिखता है। अगर एक साल और इसी क्लास में रहेगा तो उसकी बुनियाद पुख्ता हो जायेगी। डैडी सहमति जताकर घर आ गये। पर उन्हें क्या पता था कि नूर मेरे दिलो दिमाग में छाई हुई है। मैं हर रोज़ उसकी तस्वीर में कोई न कोई इज़ाफा कर लेता था। किसी दिन उसकी आँखों में काजल होता, तो किसी दिन उसके बारीक होंठों पर लिपस्टिक होती, तो किसी दिन वह जूड़ा बनाये हुए होती तो किसी दिन उसके नाखूनों में लाल रंग की नेल पालिश लगी होती तो किसी दिन वह हरा घाघरा और सफेद चोली पहने हुए होती। मेरी हालत किसी पागल की सी हो रही थी और हैड मास्टर मेरे गणित की बुनियाद पुख्ता करना चाहता था! कैसे डैड की सच्चाई बताऊ समझ में नहीं आ रहा था! कई बार सोचा मम्मी को बताऊँ पर क्या बताऊँ। जिसको देखा तक नहीं उसके ख्यालों में खोया रहता हूँ। यह पागलपन नहीं है तो क्या है? मम्मी यही कहेगी। कैसे मिलूं, नूर से? यही एक सवाल बार-बार दिमाग में आता रहता। नूर का ख्याल अब मुझे सारा सारा दिन जकड़े रहता। छुट्टियाँ खत्म हो गयी थीं। स्कूल शुरू हो गया था। मेरे सिवाय सब नये छात्र थे मेरी क्लास में। किसी ने भी मुझसे तब बात नहीं की। मैं सबसे आखिरी बैंच पर बैठने लगा। क्योंकि मैं दोबारा उसी क्लास में बैठा था तो कुछ विषयों में मास्टर जी द्वारा पूछे गये सवालों के मेरे जवाब ठीक हुआ करते थे। पहले यूनिट टेस्ट में मैं गणित को छोड़कर सबमें अव्वल आया। गणित में भी पहले से अच्छे नम्बर आये थे। मतलब बुनियाद पुख्ता हो रही थी। पहले यूनिट टेस्ट के रिजल्ट के आधार पर मुझे क्लास का मॉनिटर बना दिया गया। मैं बहुत खुश था। डैड भी अब मुझे गर्व से देखते और मुझे लगता कि वह मन ही मन कह रहे थेः ठीक ही हुआ रियायत दिलाकर पास नहीं करवाया। पर नूर का ख्याल मन से जा ही नहीं रहा था। हर रोज उसकी नई छवि मेरे दिमाग में बना करती थी और उस छवि को लेकर मैं घन्टों अपने ख्यालों में खोया रहता था।

दो महीने बाद की बात है। सन्डे का दिन था। सुबह के नौ बजे थे। अचानक जीने से ऊपर चढ़ते हुए मुशताक चचा की आवाज़ आयी "गोलू, अरे भई दरवाजा खोलिये। हम आ रहे हैं। मैं भागकर गया और दरवाज़ा खोला। तीन मिनट में मैंने अपने सामने चचाजान और एक लड़की को उनके साथ खड़ा पाया। कहीं यही तो नूर नहीं है? मेरे दिमाग में सवाल कौंधा। मुशताक चचा और वह लड़की अंदर आ गये और जमीन पर बैठ गये। डैडी और मम्मी भी आ गये। "अरे, आज तो तेरे रद्दी लेने का दिन नहीं है। मम्मी ने कहा।" नहीं, दादी जी, आज कुछ और काम है। "डैडी ने कहा" क्या है?"

मुशताक चचा ने बताया, "अंकल जी, आप तो जानते ही हैं मैं बरसों से रद्दी का धन्धा कर रहा हूँ। आप जैसे अपने हितैषियों से रद्दी खरीदता हूँ और घर जाकर उसको अलग-अलग करता हूँ। प्लास्टिक एक तरफ, शीशे की बोतलें एक तरफ, पुराने अखबारों का एक अलग ढेर, पुरानी मैगज़ीनों का एक अलग गट्ठा, पुरानी किताबें और नोटबुकों का अलग अलग ढेर लगाता हूँ। शाम को मालिक को देकर हिसाब कर लेता हूँ। पर कल रद्दी में से ये फटे हुए कागज मिले। इन पर कुछ लिखा हुआ है। कुछ कागज़ मानो बीचो बीच से आधे फाड़े गये थे लम्बाई के बल, कुछ चौड़ाई के बल, कुछ कागज़ बिना फाड़े ही गड्डी बनाकर रखे हुए थे। मैंने फौरन नूर, की तरफ देखते हुए नूर को बुलाया और कहा "नूर, बेटे, ज़रा इन कागजों को देख कहीं किसी के ज़रूरी कागज़ तो भूल से रद्दी में नहीं आ गये? ये कागज़ ज़रूरी तो लगते हैं। लगता है किसी ने किसी को कोई लम्बा सा खत लिखा है और बाद में लिखने वाले को जाने क्यों इन पर गुस्सा आया और उसने फाड़ दिये। "नूर ने कागज़ देखे और कहा, "अब्बू, इन कागजों पर नम्बर पड़े हुए हैं। लाइये, पहले इन्हें तरतीब से लगा हूँ फिर बताऊँगी कि क्या है।"

"रातभर बैठकर नूर ने इन कागजों को नम्बरवार लगाया है और इसका कहना है कि यह एक अफसाना ही है।" मुशताक चचा ने कहा।

मुशताक चचा यह सब बता रहे थे और मैं नूर को देख रहा था। मैंने कुछ नहीं सुना। ऐसा बहुत कम होता है कि किसी इंसान के बारे में आप की कल्पना बिल्कुल ठीक निकलती है। नूर बिल्कुल वैसी ही थी जैसी मैंने अपने ख्यालों में सोची थी। बला की खूबसूरत थी। बातचीत करने का अंदाज़ भी निहायत बेहतरीन और तहजीब भरा। मम्मी ने कहा "दिखा तो?"

चचा जान ने फटे कागजों का पुलिन्दा, जो नूर ने जोड़ कर तरतीबवार लगा दिये थे, मम्मी को दिया।

"बात तो तेरी ठीक है। कोई कहानी लिख रहा था और लिखने के बाद जब उसने इसे पढ़ा तो उसको शायद अच्छी नहीं लगी तो फाड़ कर रद्दी में फेंक दी। "मम्मी ने कहा। डैडी ने वह पुलिंदा लिया और शुरू के दोचार पन्ने पढ़े और फिर मम्मी को देते हुए कहा, "इसे पढ़कर देखो और अगर वाकई में यह अच्छी कहानी है तो अनाम लेखक के नाम से कहीं छपने

भेज देंगे। लेखक ने क्यों अपनी रचना के साथ इतनी बेदर्दी भरा सलूक किया शायद यह भी समझ में आ जाये।

मम्मी ने वे कागज ले लिये। मुशताक चचा ने मुझे नूर से मिलवाया और कहा "यह हमारा गोलू है और यह हमारी नूर।" बस पहचान हो गयी। नूर ने मुझसे पूछा, "मैं कौन सी क्लास में हूँ? कौन से स्कूल में हूँ? वगैरह वगैरह। अपने बारे में बताया कि वह सेंट जॉन स्कूल में है। स्कॉलरशिप मिलती है। इसी साल बारहवीं का इम्तिहान दे रही है, साइंस स्ट्रीम में है, इंजीनियर बनना चाहती है। दस मिनट की मुलाकात ने मुझे नूर के और भी करीब ला दिया।

सन्डे को नाश्ता निबटा कर मम्मी उस पुलिंदे को लेकर आरामकुर्सी में बैठकर पढ़ने लगीः

मैं कई बार सोचती हैं कि क्या मैं कोई अपवाद हूँ या फिर ऐसा हर किसी के साथ होता है। हर मोड़ हर एक की जिन्दगी की दिशा बदल देता है या फिर सिर्फ एक पत्थर बन कर रह जाता है अपना सिर पटकने के लिये? इस सवाल की भी गोल्डन जुबली है आज। जवाब नहीं मिला, हाँ कभी-कभी बतौर रिएक्शन कुछ एक्सप्लेनेशन या फिर कमेन्ट ज़रूर दिमाग में आये। आज तक इसी मोड़ पर खड़ी हूँ। पचास साल एक ही मोड पर खड़े रहना, एक ही सवाल का जवाब ढूंढना काफी नीरस अहसास है। मैं जानती हूँ पर क्या करूं? कई बार पीछे मुड़ कर देखा है पर ...।

आज मेरी शादी की पचासवीं साल गिरह है। मेरी शादी की गोल्डन जुबली! आज जब पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो जिंदगी में कुछ मोड़ ऐसे आये कि उन्होंने जिन्दगी की दिशा ही बदल दी और कुछ मोड़ ऐसे आये जो सिर्फ मोड़ बनकर रह गये वहीं के वहीं पत्थर बन कर खड़े रहे और मैं अपना सिर पटकती रही उन पर।

जब देश का बँटवारा हुआ था तो मैं दस साल की थी। मेरा मकान जामा मस्जिद के उत्तरी दरवाजे से करीब दो सौ गज़ दूर था। जामा मस्जिद और हमारे घर के बीच एक संकरी सड़क थी जिसके दाहिने हाथ पर कोने में एक हाथी दाँत की ज्वैलरी बनाने वाले की दुकान, फिर तीन दुकानें आतिशबाजी वालों की, फिर एक दाँतों के डाक्टरों और अस्पतालों के लिये सामान बेचने की दुकान, उसके आगे तीन दो मंजिला रिहायशी मकान और आखिर में एक बर्फ वाले की दुकान। सड़क के बाँयीं तरफ एक सरकारी अस्पताल और उसमें काम करने वाले डॉक्टरों और नर्सों के मकान यही सब था हमारे मकान के साथ। हमारे मकान और बर्फ की दुकान के बीच एक गली थी और इसी गली के नुक्कड़ पर हमारा दुमंजिला मकान था। हर मंज़िल पर एक बड़ा लम्बा छज्जा था। हमारे मकान के नीचे एक पंसारी की दुकान थी। हमारे घर से अंदर जाती गली में ज्यादातर मुसलमानों के परिवार थे और इसीलिये मेरी हमदम सहेलियाँ फातिमा, नसीबन, शबनम और जाहिदा थीं। बहुत आनाजाना था। हम लोग मीठी ईद पर उनके यहाँ जाया करते थे, वे हमारी दीवाली, होली मिलने आया करती थीं और बकरीद पर हमारा हिस्सा लाया करती थीं। यही वजह है कि मेरी ज़बान में उर्दू, फारसी और अरबी के लफ्ज़ आ गये थे। इसके अलावा मेरे वालिद भी उर्दू के अदीब थे और सरकारी महकमें में मामूली से क्लर्क थे। वह भी घर में यही ज़बान बोला करते थे। गालिब और मीर तकी मीर के दीवान उन्हें जबानी याद थे। सुबह-सुबह काम करते हुए वही गुनगुनाया करते थे। मेरी माँ आठवीं पास थी और कमेटी के स्कूल में टीचर थी। वक्त के साथ साथ मेरी माँ ने हिंदी में पीएच.डी. कर ली और हाईस्कूल की हैड मिस्ट्रेस बन गयी। वालिद साहेब ने इंटर पास कर लिया और सरकारी महकमें में तरक्की मिल गयी। वे एक अफसर बन गये।

मुझे आज भी याद है देश के बटवारे के वे दिन। वे छह महीने नहीं शायद आठ महीने मैं लाशों भरी ट्रकों की गवाह बनी रही। हर रोज़ हमारे घर के सामने से लाशों भरे ट्रक जाने उन्हें कहाँ ले जाया करते थे। रातों रात जाहिदा, नसीबन, फातिमा, शबनम कहीं गायब हो गयीं। उन्होंने मकान खाली कर दिये और उन मकानों में रिफ्यूजी आकर बस गये। हर रात नारों से गूंज जाया करती थी। जब भी नारों की आवाज़ सुनती तो मैं माँ से लिपट जाया करती थी। और माँ कहा करती थी, "हे ईश्वर, इन्हें सद्बुद्धि दे। जाने वालों को मार क्यों रहे हैं? हमारे और उनके बच्चे एक ही अस्पताल में पैदा हुए हैं, एक साथ बड़े हुए हैं। इतने छोटे-छोटे बच्चों को क्या बतायें हम? रहम कर या खुदा!"

मुझे आज भी याद है जब गाँधी जी को गोली लगने की खबर माँ और अब्बू ने सुनी थी रेडियो पर तो वे दोनों फफक-फफक कर रातभर रोते रहे। हमारे यहाँ चार दिन चूल्हा नहीं जला। सिर्फ मेरे लिये नीचे से हलवाई से कुछ खाना लाकर देते रहे। मैं जब भी पूछती, "गाँधी जी कौन थे?" तो माँ का जवाब होता "हम सबके बापू थे।" मैं सोचा करती थी कि एक आदमी सारे देश का बापू कैसे हो सकता है? बड़े होने के बाद समझ में आया कि गाँधी जी को देश का बापू क्यों कहते हैं। हालातों को सामान्य होने में काफी वक्त लगा। डेढ़ साल बाद स्कूल फिर से शुरू हुए। अध्यापक हर बच्चे के घर-घर जाकर बता रहे थे कि अब स्कूल शुरू हो गये हैं। स्कूल में आओ। मैंने छठीं क्लास में बैठना शुरू कर दिया। हमारी गली में से अब स्कूल

यूनिफार्म पहने बच्चे स्कूल जाते हुए दिखने लगे। अब स्कूल में बच्चों के नामों में जहीर, जाहिद, अनवर या फातिमा, शबनम और नसीबन नहीं थे। रिफ्यूजियों के बच्चे दिन में स्कूल आते थे और शाम में सिनेमाघरों, सड़कों या गलियों में कुछ न कुछ बेचा करते थे। कोई आटे के बिस्कुट, कोई पापड़, कोई कंघे, कोई पेन या फिर कुछ ऐसा ही। घर की औरतें भी काम किया करती थीं। कुछ पुराने अखबारों के लिफाफे बनाया करती थीं, कुछ घर-घर जाकर बर्तन माँजा करतीं थीं, पोंछा लगाया करती थीं, कुछ अपने घर के बाहर तंदूर की रोटियाँ सेकतीं और घर-घर पहुँचाया करती थीं।

पिछले तीन सालों से हमारे यहाँ कोई मीठी सेवईयाँ नहीं लेकर आया, न ही हमने होली दीवाली मनायी, न ही कोई हमारा हिस्सा लेकर आया। बदरंग हो गयी थी हमारी जिन्दगी। न हमारे यहाँ कोई आया करता और न हम किसी के यहाँ जाते। वैसे भी हमारे रिश्तेदार दिल्ली के बाहर रहते थे। मेरी तीन मौसियों की शादी हो चुकी थी। एक कालका में, दूसरी सोनीपत में और तीसरी गाजियाबाद में रहती थी। मेरे एक ताऊ करनाल में, दूसरे बीकानेर में, तीसरे मेरठ में और चौथे पटियाला में रहते थे। नानी हमारे साथ रहती थीं और दादी से मिलने हम गर्मियों की छुट्टियों में रोहतक जाया करते थे। एक बुआ और एक मामा गोल मार्केट में रहा करते थे। उनके यहाँ हफ्ते दो हफ्ते में जाना हो जाया करता था और इसीलिये मैं मामा और बुआ के बच्चों के ज्यादा करीब थी। हम उम्र थे होने से मैं दिव्या को दीदी कहती थी और न नरेन को भैया कहती थी। वे दोनों मुझे अपना दोस्त मानते थे और मैं भी उन्हें अपना दोस्त मानती थी। मुहल्ले में मीरा, उर्मिला और निशा मेरी सहेलियाँ बन गयी थीं, वे मेरी ही क्लास में पढ़ती थीं। मेरी दूसरी सहेलियाँ जो पाकिस्तान चली गयी थीं उनके बारे में कई साल तक कुछ पता नहीं चला।

मैंने पन्ना पलटा देखा कि कुछ पन्ने नहीं थे। पिछले पन्ने पर 10 लिखा हुआ था। पन्ना पलटा तो 15 लिखा हुआ था। लिखा थाः कल हम सबको स्कूल में रंग बिरंगे कपड़े पहन कर, दो-दो चोटियाँ करके पॉलिश किये जूते पहनकर आने के लिये कहा है। मैं, मीरा, निशा और उर्मिला सभी रंग-बिरंगे कपड़े पहन कर स्कूल गये। स्कूल में प्रार्थना हुई। हम सबको जमीन पर बैठने के लिये कहा गया। हेड मास्टर कह रहे थे : बच्चों, आज हम सबके लिये और हमारे देश के लिये सबसे महत्वपूर्ण दिन है। आप सबको याद रखना चाहिये कि आज से हर 26 जनवरी को हमारा गणराज्य दिवस मनाया जायेगा। आज से हमने अपना संविधान लागू किया है जिसमें नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का विधान है। आज हम सब शपथ लेते हैं (सबको खड़ा होने के लिये कहा गया और हेड मास्टर साहेब ने पढ़ना शुरू किया)। "मैं भारत की नागरिक यह शपथ लेती हूँ कि मैं भारत के संविधान के प्रति निष्ठा रखूँगी, इसमें लिखे हुए कर्तव्यों को निभाऊँगी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहूँगी। इसके बाद हेड मास्टर साहेब ने हमें संविधान के बनने की कहानी सुनाई और बताया कि लोक सभा और राज्य सभा ने इसको मंजूरी दे दी है। आखिर में उन्होंने कहा कि आज से 15 अगस्त को हमारा स्वाधीनता दिवस और 26 जनवरी को हमारा गणराज्य दिवस मनाया जायेगा। इसके बाद हम सबको एक छोटी तश्तरी में चार-चार पेड़े रखकर दिये और एक घन्टे के साँस्कृतिक कार्यक्रम के बाद स्कूल की छुट्टी हो गयी।"

आज तीस जनवरी है। मैं, माँ और अब्बू सुबह ही नहा धोकर तैयार हो गये। आज बापू की पुण्य तिथि है। हालाँकि बापू की समाधि घर से ज्यादा दूर नहीं थी फिर भी हम हमेशा की तरह साइकिल रिक्शा में ही जाया करते थे। वैसे भी उन दिनों ताँगे, रिक्शा और ट्राम के अलावा कोई सवारी थी ही नहीं। बसें ज्यादा नहीं थीं। ज्यादातर लोग रिक्शा पसन्द किया करते थे। हमने साइकिल रिक्शा लिया और समाधि पहुँच गये। सुबह के आठ बजे थे। सर्दी भी बहुत थी। जनवरी का महीना अक्सर बहुत ठंडा हुआ करता था। जैसे ही दीवाली आती माँ गर्म कपड़े निकाल कर धूप में सुखा देती और फिर ये गर्म कपड़े होली तक पहनने पड़ते थे। हम सबने समाधि की परिक्रमा की और पास में ही चल रही प्रार्थना सभा में बैठ गये। दस बजे प्रार्थना सभा खत्म हुई। साढ़े दस बजे हम घर लौट आये। मुझे पता था आज हम सबका व्रत होता है। सो खाना शाम को ही मिला।

मैंने सातवीं पास कर ली। अचानक रात को मेरी आँख खुल गयी। मुझे लगा मेरा कच्छा गीला हो गया है। मैं उठकर बाथरूम में गयी, फ्रॉक उठा कर देखा कि कच्छा तो खून से लाल हो गया था। मैंने उतारा और जहाँ से खून आ रहा था वहाँ उँगली डाली तो उँगली भी लाल हो गयी। मैं फौरन भागकर आयी, माँ को जगाया, घसीट कर उसे बाथरूम में ले गयी और खून से रंगा कच्छा दिखाया, अब्बू भी तब तक आ गये थे। माँ ने अब्बू को बाहर भेजा और पुरानी धोती को चीर कर थोड़ा कपड़ा लिया और कमर से बॉध दिया। कहाः घबराने की कोई बात नहीं है। अब तू बड़ी हो गयी है। कल सुबह सब समझाऊँगी अभी सो जा। मैं और माँ बाहर आये और मैं अपने बिस्तर पर लेट गयी। मैंने उस कपड़े को छुआ वह भी गीला हो गया था। पेट में भी दर्द हो रहा था। काफी देर तक मुझे नींद नहीं आयी। अगले दिन सुबह माँ ने मुझे एक किताब दी और कहा, "इसको ध्यान से पढ़ ले। सब समझ जायेगी।

जो हिदायतें दी हैं उनके मुताबिक ही करना।" उस किताब ने सरल भाषा में मुझे मेरी माहवारी और प्रजनन के बारे में सब कुछ बताया और यह भी बताया कि उन तीन दिनों में मुझे क्या-क्या प्रीकॉशन लेने होंगे। आज सोच रही हूँ तो समझ में आता है कि मेरी माँ कितने खुले विचारों की थी, दकियानूसियत से कोसों दूर और अंधविश्वासों को पूरी तरह नकारने वाली। जिन्दगी का यह नया मोड़ उसने इतनी आसानी से समझा दिया। उसने इन तीन दिनों में कभी मुझ पर कोई बंधन नहीं लगाया, कोई काम करने के लिये मना नहीं किया। वह कहा करती थी कि वह सब स्वाभाविक है। हर किसी की ज़िन्दगी में उम्र के हर पड़ाव पर कुछ न कुछ बदलाव होते हैं जो अक्सर सकारात्मक होते हैं और हमें उन्हें सकारात्मक तरीके से ही लेने चाहिये।

मैंने फर्स्ट क्लास विद डिसटिंक्शन में बाराहवीं पास कर ली और मिरांडा हाउस में बी.ए. इक्नोमिक्स (ऑनर्स) में दाखिला ले लिया मेरे लिए सारी क्लास नयी थी। हम सब अलग-अलग स्कूलों से आये थे। कुल मिलाकर 25 लड़कियाँ थीं सबने एक दूसरे को अपना नाम बताया और जान पहचान हो गयी। पहले हफ्ते रैगिंग भी बहुत हुई पर मज़ा आया। एक उन्मुक्तता का सुखद अहसास हुआ। पहले दिन से ही क्लासे शुरू हो गयीं। हर रोज़ 10 बजे से 1 बजे तक और 2.30 बजे से 4.30 बजे तक क्लासे होती थीं। फर्स्ट इयर खत्म होते होते मेरी चार सहेलियाँ बन गयीं। हम पाँचों अब साथ-साथ ही लंच किया करते थे और कभी-कभी कमला नगर में सिनेमा देखने भी जाया करते थे। मैने बी.ए. इकोनॉमिक्स (ऑनर्स) फर्स्ट क्लास में पास किया और माँ ने प्राइवेट स्कूल से ग्यारहवीं वो भी फर्स्ट क्लास में। माँ अब प्राइमरी स्कूल की हैड मिस्ट्रेस हो गयीं और मैं डी.एस.ई. (देहली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स) में एम.ए. (इकोनॉमिक्स) में दाखिल हो गयी।

कल ईद है। इस साल ईद जल्दी आ गयी थी। हर ईद और दीवाली पर मुझे नसीबन, फातिमा, शबनम और जाहिदा की बहुत याद आया करती थी। जबसे पाकिस्तान गयी थीं कोई खैर खबर नहीं आयी थी। इस ईद पर भी कोई मीठी सेवियाँ लेकर नहीं आया। मन बहुत उदास था। पुरानी यादें ताजा हो रही थीं। पता नहीं उन्हें मेरी याद आती भी होगी या नहीं!!

आज घर पहुँची तो माँ ने चार लिफाफे दिये। देखा तो लाहौर से आये थे। जल्दी-जल्दी खोला तो देखा कि ईद मुबारक के कार्ड थे। नसीबन, फातिमा, शबनम और जाहिदा ने भेजे थे। मैं बहुत खुश हुई। चारों का लिखा हुआ खत भी था। खत में लिखा थाः प्यारी रेहाना, (वे मुझे प्यार से रेहाना पुकारती थीं) ईद बहुत बहुत मुबारक। ईदी उधार रही। हम चारों पंजाब यूनिवर्सिटी में एम.ए. (इंग्लिश) कर रही हैं। अपने बारे में लिख। अगले खत में सब कुछ तफसील से लिखेंगें। अल्लाह, तुझे सलामत रखे। खुदा हाफिज़। इस तरह खतों का आना-जाना शुरू हो गया। महीने दो महीने में हम एक दूसरे को खत लिखने लगे और एक दूसरे के बारे में सब कुछ जानने लगे। जिन्दगी के इस नये मोड़ पर नयी यादों का ढेर इकट्ठा होने लगा। मैंने उन्हें दीवाली की ग्रीटिंग्स भेजी। उन्होंने भी मुझे दीवाली की ग्रीटिंग्स भेजी। इस तरह हमारे बीच ईद, होली, दीवाली और नये साल मनाने का सिलसिला फिर शुरू हो गया।

मैंने एसई से एम.ए. कर लिया और उधर फातिमा, नसीबन, शबनम और जाहिदा ने भी अपने एम.ए. खत्म कर लिये। मैं एसई में ही लेक्चरर हो गयी, फातिमा ने अखबार में नौकरी शुरू कर दी, नसीबन रिसर्च में जुट गयी, शबनम स्कूल में टीचर हो गयी और जाहिदा ने पंजाब यूनिवर्सिटी में इंग्लिश डिपार्टमेंट ज्वाइन कर लिया।

मैंने पन्ना पलटा। देखा कि बारह पन्ने गायब थे और अगला पन्ना ऊपर से आधा फटा हुआ था। इस पन्ने पर नम्बर नहीं डला हुआ था। मैंने आगे पढ़ना शुरू किया :

मेरी विवान से शादी होने वाली है। अगले महीने की 15 तारीख को है। सगाई आज हुई है। विवान बैंक में मैनेजर है। चार साल पहले वह प्रोबेशनर अफसर सिलेक्ट हुआ था। एसबीआई में है। मम्मी पापा ने पसन्द किया था। देखने के लिये यूनिवर्सिटी कॉफी हाऊस में आया था। ज्यादा कुछ बात नहीं हुई बस हाँ भर दी। देखने में ठीक-ठाक था और अच्छी पोस्ट पर था। मम्मी ने कहा हमारी तरह ही नौकरी पेशे वाला है। वक्त से आयेगा-जायेगा आफिस। सगाई के बाद मेरे मन में कई सवाल उठ रहे थे। बिना जाने पहचाने, बिना स्वभाव और आदतों के जाने हम कैसे जी पायेंगे। मेरे टीचर के.एन राज, एस.एच. नक्वी, बी.एन. गाँगुली जैसे मार्क्सवादी विचारों के दिग्गज टीचर थे और मैं मार्क्सवाद से पूरी तरह प्रभावित थी। डर लग रहा था कि कहीं विचारधाराओं में अगर टकराव हुआ तो ... और फिर पहले ही दिन अगर– सुहागरात के नाम पर ... मैं अपनी मामी के बहुत करीब थी। मेरी हर समस्या का हल उनके पास होता था। मैंने मामी को अपने सवाल बताये। मामी ने कहा कि वक्त बहुत बलवान होता है। जब दो इंसान साथ रहते हैं तो एक दूसरे के आदी हो जाते हैं। आलोचनाओं और तारीफों के बीच जिन्दगी गुजरने लगती है और जब कोई आदत या हरकत नाकाबिले बर्दाश्त होने लगती है तो या तो एक इंसान समझौता कर लेता है या खुद को ग्लानी में कोसते कोसते थोपे गये रिश्ते का बोझ ढोता रहता है जैसे मैं, या रिश्ता

खत्म कर देता है। तीसरा पर्याय है ही नहीं। मुझे ही देख लें मैंने कई समझौते किये हैं यहाँ तक कि सेक्स के ममले में भी। इतने सालों की शादी में कितनी बार मेरा आर्गज़म हुआ है, कितनी बार मेरे अंदर का स्टीफ हुआ है मैं ऊँगलियों पर गिन सकती हूँ। अक्सर मैं अतृप्त, प्यासी और अधूरा ही रही हूँ। हालाँकि शारीरिक भूख भी उतनी ही अहम् होती है जितनी और कोई दूसरी भूख, पर मैंने इस सच को मान लिया है। हितेश से हर बार कहा भी कि यह भूख आज भी नहीं मिटी पर वह कोई ध्यान नहीं देता। असली बात तो यह है कि उसे मेरी इस भूख से कोई लेना देना है ही नहीं।

"अक्सर हम लोग अपनी सेक्स लाईफ किसी से भी डिस्कस नहीं करते। सारी दुनिया में हर कौम का सेक्सुअल बिहेवियर डाक्यूमेन्टेड है पर हम हिन्दुस्तानियों का कोई रिकार्ड नहीं है। कहने को तो कामसूत्र हमारे ही देश की देन है दुनिया को। सारी दुनिया हमारे यहाँ खजुराहो देखने आते हैं।" मामी ने कहा। मैं यह सुनकर हक्की-बक्की रह गयी। फिर माँ की कही बात याद आ गयी। सोच रही थी कि मामी ने अपनी जिन्दगी के इस पड़ाव और मोड़ को क्या सकारात्मक तरीके से लिया है? नहीं, यह तो भूखी रहने के लिये अभिशप्त है। अभिशाप में सकारात्मकता कहाँ है? जवाब आया। मैं सोच रही थी कि कहीं मेरे साथ भी ऐसा हुआ तो?!!

आज मेरी शादी है। कल मामी के कहने पर सारे बदन के अनचाहे बालों को साफ किया था। बारात दरवाजे पर आ गयी थी। जयमाला के लिये हम दोनों आमने-सामने खड़े थे। पहले विवान ने पहनाई और पहनाते-पहनाते मेरी छातियों पर हाथ फेरा। मैं काँप गयी। हे ईश्वर, कैसा वक्त आने वाला है? मैं सोच रही थी। फिर मैंने पहनाई। फेरों के वक्त भी वह मौका देखकर मेरी छातियों, जाँघों पर हाथ रखता रहा। मैं उसे आँखों ही आँखों में मना करती रही पर वह हरबार मुस्कुरा देता। मम्मी ने भी देख लिया था पर वे अनदेखा करती रहीं। मुझे अब गुस्सा आ रहा था। फेरों के बाद जब खाने बैठे तो भी वह अपनी हरकतें करता रहा। आखिर मैंने कह ही दिया, "विवान, सबके सामने यह सब मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। प्लीज डोन्ट डु इट अगेन?!" इसके बाद विवान ने कुछ नहीं किया। विदा हो गयी। अगले दिन पैर फेरने आयी तो मामी ने पूछा, "क्यों, कुछ हुआ?" मैंने पूछा "क्या मतलब?" "अरे वही सुहागरात।" "नहीं। मसूरी जा रहे हैं। अगले हफ्ते। पर मैं कह दूंगी कि अभी थोड़ा रुक जायें। एक-दूसरे को कम से कम समझने तक के लिये।" मामी ने कहा, "विश यू गुडलक!"

अगले हफ्ते हम मसूरी आ गये। होटल में पहुँचते ही विवान ने मुझे कपड़े बदलने के लिये कहा और इससे पहले कि मैं कुछ कह पाती वह शुरू हो गया। मेरी गोल और सख्त छातियों को विवान दबाये, नोचे जा रहा था। मुझे दर्द होने लगा। मैंने चिल्लाकर कहा, "नोचना बंद करो।" छातियाँ नोचने के साथ साथ वह मेरे होंठ भी दबाये जा रहा था। होंठ भी दर्द करने लगे। मैंने उसे कहा, "बंद करो ये नोचना दबाना।" पर उसने एक न सुनी। बस करता रहा। इससे पहले कि मुझे कुछ महसूस होता विवान सब खत्म करके मेरे बाँये हाथ की तरफ लेट गया। हम हाँफ रहे थे। थोड़ी देर में ही वह सो गया। मैं इस पहली बार को महसूस करने की कोशिश करती रही सिवाय कुछ गर्म गर्म बूंदों के टपकने और उनके बाहर आने के अलावा कुछ भी महसूस नहीं किया मैंने। मेरे अंदर का 'वह' स्टीफ हुआ ही नहीं, स्वैल हुआ ही नहीं। यह नोचना, दबोचना, दबाना, यह क्या जंगलीपन है? बिना कोई बात किये बस ... मुझे लगा कि मुझे फौरन नहाना चाहिये और मैं नहाने चली गयी।

हम एक हफ्ता मसूरी में रहे और इस एक हफ्ते में मैं हर रोज़ चार-पाँच बार नहाई। विवान ने एक बार भी नहीं पूछा कि मुझे अच्छा लग रहा है या नहीं, मैं चाहती हूँ भी या नहीं। एक बार मैंने उसे कहा भी कि कम से मेरी मर्जी भी पूछ लिया करिये। विवान ने कोई जवाब नहीं दिया। वह बस करता रहा, और मैं हर बार नहाती रही।

हर बार मुझे मामी की बात याद आती रही कि जब आर्गज्म होता है तो लगता है कि अंदर का 'वह' स्टीफ हो गया है, स्वैल हो गया है, एक लहर आ रही है या फिर एक छींक सी आती है और मन को महसूस होता है एक संपूर्णता का। इस फीलिंग को बयान नहीं किया जा सकता सिर्फ महसूस किया जा सकता है और सबसे बड़ी बात कि आदमी भी महसूस कर सकता है कि तुम्हारा स्वैल हो रहा है और तब दोनों अपनी-अपनी भावना अपने-अपने हावभावों से ही जाहिर कर पाते हैं। बिना कुछ कहे बहुत सी बातें हो जाती हैं। मामी की फोर प्ले और आफ्टर प्ले की बात भी याद आयी। विवान ने ऐसा कभी कुछ नहीं किया, बस एक रोबोट की तरह खचखच करता और चाबी खत्म होने पर रुक जाता। मैं हर बार नहाती मानो कोई कीचड़ धो रही थी। यह कैसा मोड़ आया है मेरी ज़िन्दगी में?!! सब कुछ बस किया जा रहा है। मन हो या न हो। दस दिन हो गये हैं इस मोड़ को आये पर कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

मैंने देखा कि फिर कुछ पन्ने गायब थे। मैं पढ़ रही थी : आज हमारी शादी की दसवीं साल गिरह है। शादी शुदा जिन्दगी का पूरा एक दशक!!! इस पहले दशक में मैं शिप्रा और गौरव की माँ बन चुकी थी। गौरव के होने के फौरन बाद मेरे और

विवान में इस बात को लेकर बहुत बहस हुई थी कि किसे फैमिली प्लानिंग के मैथड चूज करने चाहिये। मेरी ज़िद थी कि वह अपना ऑपरेशन करा ले। उसकी जिद थी, कि जो भी करूं वह मैं ही करूं। हम दोनों छह महीने तक यही बहस करते रहे। एक बार मेरे पीरियड्स मिस हो गये। मुझे डर लगने लगा कि कहीं मैं फिर माँ न बन जाऊँ। मैं डॉक्टर के पास गयी। मुझे बड़ी तसल्ली हुई कि मैं प्रेगनेन्ट नहीं थी। मेरी समझ में आ गया था कि अगर हम दोनों अपनी अपनी जिद पर अड़े रहे तो एक दिन मैं फिर माँ बन जाऊँगी। डॉक्टर ने कहा, "स्वाती इन मर्दो को कोई नहीं समझा सकता। मेरी मानो तो कॉपर टी लगवा लो। "मैंने सोचा कि यही ठीक रहेगा। इस पहले दशक में कुल मिलाकर मैंने बीस या पच्चीस बार आर्गजम महसूस किया बाकी बार तो बस नहाने जाती रही। विवान ने कभी नहीं पूछा कि मेरी भूख मिटी या नहीं, मैं चाहती भी थी कि नहीं, मैं भूखी, अतृप्त और सड़ांध में जीती रही। हाँ, बच्चे दो जरूर पैदा हो गये थे। विवान से मेरा कुछ लगाव ज्यादा नहीं हो पाया न भावनात्मक और न शारीरिक स्तर पर।

इस दशक में मेरी जिन्दगी में एक और बहुत ही बदसूरत मोड़ आया। शादी के पंद्रह दिन बाद एक दिन विवान अपनी ऑफीयल पार्टी से नशे में घर आया। मैं हक्की बक्की रह गयी। उस दिन उसका बदबूदार मुँह मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा था और वह था कि सवार हो गया। मेरे घर में कोई शराब नहीं पीता इसलिए मुझे पता ही नहीं था कि कैसे बात की जाये। एक बात साफ थी कि मुझे उसके मुँह से आ रही बदबू बर्दाश्त नहीं हो रही थी। मैं इस ख्याल से काँप उठी कि अब इस बदबू, अपनी अतृप्तता और भूख के साथ ज़िन्दगी गुजारनी पड़ेगी। और अब बदबू, सड़ाँध और भूख मेरी जिन्दगी का अहम हिस्सा बन गये। हे ईश्वर, यह क्या हो रहा है मेरे साथ। यह बदबू, सड़ाँध और भूख भरा मोड़ अब एक लम्बा और कभी खत्म न होने वाला रास्ता बन गया है।

शादी के पंद्रह दिनों बाद ही एक और नया मोड़! कीचड़— तो नहा कर धोयी जा सकती है पर इस बदबू और सड़ाँध को कैसे कम किया जाये? समझ में नहीं आ रहा था।

आज शादी की बीसवीं सालगिरह है। इस दूसरे दशक में सभी कुछ वैसा ही रहा। बस शिप्रा अब शी-कप्स पहनने लगी है और मैं टैम्पून्स। टैम्पून्स मुझे एक अच्छा अहसास दिलाते हैं और नहाने नहीं जाती। गौरव की मंसें भींग गयी है। मेरे मन में विवान के प्रति घिन होने लगी है। बार-बार यही सवाल "क्यों, यह इंसान मुझसे एक बार भी नहीं पूछता कि कैसा लगा? अच्छा लगा क्या? लहर आयी क्या? मैं चाहती क्या हूँ? मैं अतृप्त, भूखी और प्यासी ही रही। सड़ाँध और अतृप्तता मेरी ज़िन्दगी का अटूट हिस्सा बन गया हैं। उसी मोड़ पर खड़ी हूँ...।

विवान के प्रति हर दिन बढ़ती घिन, उसका बदबू भरा मुँह, हमेशा जलाने वाली भूख, हरबार नहाना और जब मन में आये टैम्पून्स और प्लन्जर पहनना— मुख्तसर में यही इस दशक का सार रहा है। मैं इस दशक में भी यह नहीं समझ पायी कि बतौर इंसान विवान मेरे लिये क्या मायने रखता है। एक दोस्त, हमदम, हमसफर या फिर एक अजनबी जो हर बार मेरे शरीर पर अपना हक जताता है, रौंदता है, नोचता है, कचोटता है और फिर हॉफने लगता है और मैं नहाने चली जाती हूँ। इस दशक में नसीबन, ज़ाहिदा, फातिमा और शबनम से भी पूछा कि वे कितनी बार नहायीं इस दशक में। उनका हाल मेरे जैसा ही था। उनका 'वह' भी कभी-कभी ही होता था खचखच के वक्त, नसीबन टैम्पून्स पहन लेती थी, जाहिदा अपनी दोनों जाँघों को रगड़ लिया करती थी, और फातिमा हैंड शावर ले लिया करती थी। शबनम का भी हाल तो यही था पर उसने अतृप्त भूख के आधार पर तलाक ले लिया था। पढ़ते हुए मैं सोच रही थी कि तलाक ही मुझे इस भूख, सड़ाँध और बदबू से निजात दिला सकता है। दो साल तक इस ख्याल को लेकर मेरे मन में उथल-पुथल चलती रही और इन्हीं दो सालों के दौरान एक दिन मैंने नेशनल फैमिली हैल्थ (एनएफएचएस) के एक सर्वे की रिपोर्ट पढ़ी। इस सर्वे में 15-49 साल की 80,000 औरतों से पूछे गये सवालः क्या आपके साथ कभी सेक्सुअल वायलन्स हुई है? क्या आपकी बिना मर्जी के सेक्स किया जा रहा है? के जवाब में 93 फीसदी ने जवाब दिया कि उनके भूतपूर्व या वर्तमान पति ने उनके साथ सेक्सुअल वायलन्स की है। मतलब मेरी जैसी 93 फीसदी औरतें नहाने जाती हैं या फिर कुछ और करती हैं। इस दशक में मुझे समझ में आया कि मैं अकेली ही भूखी, अतृप्त और प्यासी नहीं हैं। मैं अकेली ही सडॉध और बदबू बर्दाश्त नहीं कर रही हूँ। मैं उन 93 फीसदी में आती हूँ। जो हर दिन बदबू, सड़ाँध में अतृप्त रहती हैं सारी जिन्दगी। इस दशक में मुझे अपने से घिन होने लगी। मैं क्यूँ इस रिश्ते को निभा रही हूँ? मैं क्यूँ यह सब बर्दाश्त कर रही हूँ? इनका जवाब नहीं ढूंढ पा रही थी। शबनम बनने को बहुत मन किया बस फैसला नहीं ले पायी ...।

पच्चीसवीं साल गिरह पर शिप्रा और गौरव के जिद करने पर हमने एक रेस्तराँ में पार्टी की। सिल्वर जुबली ईयर में मेरे पीरियड्स की फ्रीक्वेन्सी कम होने लगी। अब टैम्पून्स की कभी दो महीने बाद तो कभी तीन महीने बाद ज़रूरत होती थी। पर मैं कभी पंद्रह दिन बाद या कभी हफ्ते बाद लगा लिया करती

थी। बस अच्छे लगने लगे थे। जब भी टैम्पून्स पहनती तो उन दिनों प्लन्जर पहनती। अच्छा लगता था।

तीसवीं साल गिरह पर मैं कॉपर-टी से मुक्त हो गयी। डॉक्टर ने कहा, "अब तुम बेखौफ सेक्स एन्जॉय कर सकती हो।" मैं मुस्कुराई। मैंने कहा "बेखौफ तो मैं कई बरसों से थी पर इसके बावजूद भी मैं भूखी, प्यासी और अतृप्त ही रही। हाँ, एक काम जो तीस सालों से लगातार कर रही हूँ वह है। हर बार नहाना।" डॉक्टर ने कोई जवाब नहीं दिया।

मैंने देखा कि फिर कुछ बीस पन्ने गायब थे। मैंने पढ़ना शुरू कियाः आज मैंने शादी वाले दिन जैसा ही जूड़ा बनाया है, (मेरे बाल आज भी काफी घने लम्बे और सफेद हैं), गहरे लाल रंग की लिपिस्टिक लगायी है। वही ग्रे रंग की नेल पालिश लगायी है, वही लाल साड़ी पहनी हुई है, अनचाहे बाल भी साफ किये हैं, टैम्पून्स पहने और प्लन्जर भी। आज पचासवीं साल गिरह है! जब पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो मसूरी के मोड़ पर खड़ी पाती हूँ। सोच रही हूँ कि यह भूख, प्यास, अतृप्तता, सड़ाध क्या मेरी नियति थी या फिर एक अभिशाप? उन दो सालों में क्यों शबनम नहीं बन पायी? ये सवाल आज भी मेरे सामने मुँह बाये खड़े हैं। यह अहसास कि मैं अपनी विचारधारा के बावजूद 93 फीसदी औरतों का हिस्सा बन कर रह गयी मुझे आज भी कचोट रहा है।"

मैंने देखा कि मम्मी ने वे सारे कागज़ पढ़ लिये और उन्हें फिर से तरतीबवार लगा दिया। कागजों को तरतीबवार लगाने के बाद उन्होंने डैड से कहा "अवि तुम भी इसे पढ़ लो।" यह कहकर वह नहाने चली गयी। मैं सोच रहा था कि मम्मी इस वक्त नहाने क्यों गयीं!!? सुबह ही तो वह नहायी थीं?!! कुछ समझ में नहीं आ रहा था... मम्मी आज बहुत देर तक नहाती रहीं। नहाकर आयीं तो मैंने देखा मम्मी ने बाल भी धोये थे। मम्मी बैठकर बाल सुखाने लगीं। मम्मी आज बहुत खूबसूरत लग रही थी। बाल सुखाकर और जूड़ा बनाने के बाद मम्मी ने डैड की तरफ देखा। डैड अवाक मम्मी को देख रहे थे... मेरे कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था...।

***

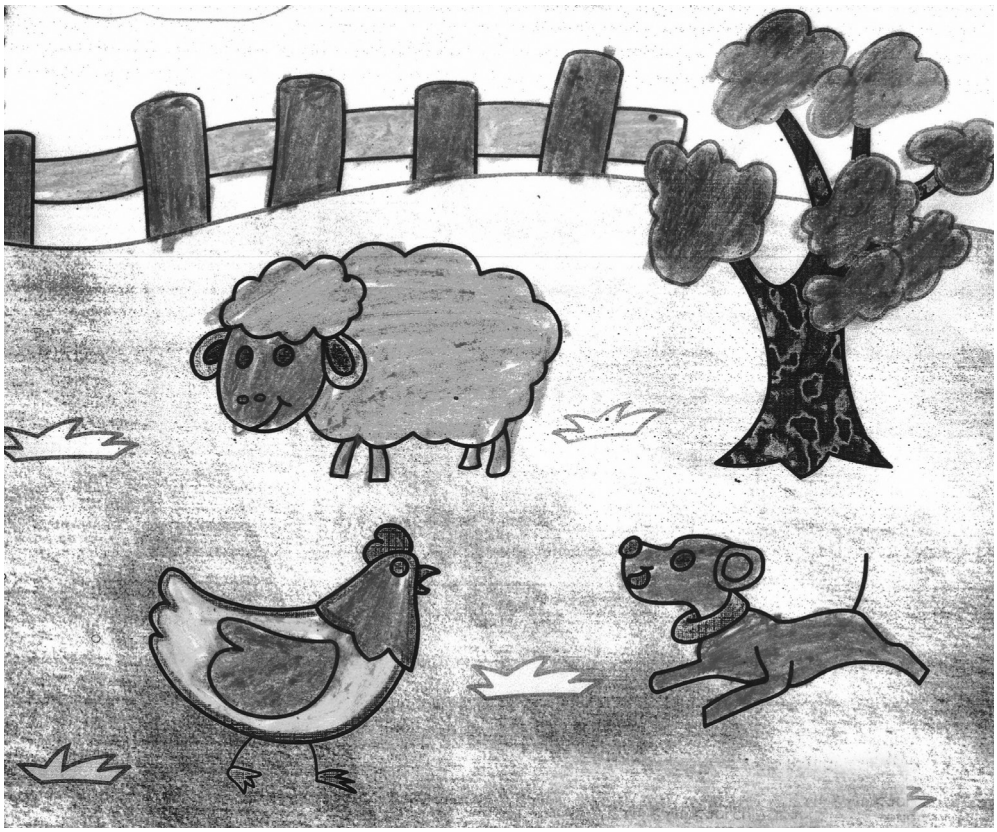

एम. विगनेश सहर, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

आखिर क्यों

मोहन पुरी

सल्तनपुर में कोई गुप्त बात घटे और लोगों को पता ना चले, आज तक हुआ ही नहीं। फिर ये सनसनीखेज खबर तो अन्य ख़बरों के मुकाबले ज्यादा ही बिजली के करंट के समान घर-घर पहुँच गई। आज शाम तक ही सारे गाँव में यह चर्चा हो गई कि लीली, किसी लड़के की फटफटी पे बैठकर फुर्र हो गई सुनने और सुनाने वालों में इस बात का जुनून इस कदर था जितना शायद होली के उत्सव में भी ना रहा हो। हर घर में यही शोर सुनाई दे रहा था।

रमलू भगत खाट के सिराहाने से गर्दन उठाते हुए बड़ी धीमी आवाज में अपनी पत्नी से फुसफुसाहट कर रहा है— देखा मैंने कहा था ना कि पढ़ाई तो बस घर वालों की आँखों में धूल झोकने का बहाना है, पढ़ाई के नाम पर घर से बाहर निकलती थी और जाने क्या-क्या गुल खिलाती थी, जब पोल खुली तो भंवरजी की नींद खुली। वह सोचते हुए वापस बोलने को हुआ चलो जो हुआ अच्छा ही हुआ— साला भंवरवा दिन-रात बेटी के गुण गाते नहीं थकता था जैसे बेटी ना हो कोई हीरे का लेंडा हो...दो दिन हो गए, बच्चू घर से बाहर नहीं निकले ..सारी लीडरी पिछवाड़े से निकल गई। अब तक रमलू भगत की पत्नी सूर में सूर मिलाए सुनती जा रही थी सांत्वना के अंदाज में कहने लगी— अजी, रंडी ने बिचारे घर वालों को कहीं का ना छोड़ा, बिचारी भगवती की तो दतकड़ी भीड़ते देर नहीं लग रही है, रोते-रोते बुरा हाल है, कल बड़ी देर तक ढांढस बंधाती रही पर इसके अलावा क्या किया जा सकता है।

सल्तनपुर के इतिहास में यह घटना अन्य घटनाओं से निराली और विचित्र थी। भविष्य दृष्टाओं को साफ-साफ यह घटना महामारी के रूप में उभरती नजर आने लगी थी। आये दिन आस-पास के गाँव में ऐसे खबरें सुनने के बाद तो उन्हें पक्का भरोसा हो गया कि यह रोग सामान्य रोग नहीं है। शीघ्र ही गाँव के पटेल ने रमलू भगत के चौपारे पर पंचायत बुलाई।

आज पटेल आवश्यकता से ज्यादा गम्भीर बनकर जोर-जोर से लोगों को बताता जा रहा है.. भाईयों ये केवल भंवरसिंह की इज्जत का सवाल नहीं बल्कि सारे गाँव वालों की..... आखिर पटेल इस घटना को इतना गम्भीरता से क्यों ना ले अभी पिछले ही महीने उनकी बेटी भी तो दूधवाले बंटी के साथ ....पर वे बड़े आदमी हैं, लोग जबान हिलाने से पहले दस बार सोचते हैं। पर गुपचुप व्यापार को कोई रोक सका है? पटेल हो या कोई कलेक्टर सल्तनपुर वाले खबरों को ऐसा मसालेदार बनाकर पेश करते हैं कि सुनने वालों को कहीं शक की गुंजाईश नहीं रहती कि वे इस घटना पर सवाल उठाए...।

पटेल को जब उनकी बेटी की करतूत की भनक लगी तो पहले उसका पढ़ना बंद करा दिया और तीन ही महीने में उसके हाथ पीले कर दिए...और सुनने में आया कि वेचारे दूधवाले बंटी की जो हालत पटेल ने की वह बताने लायक तक नहीं है .....गुप्त अंग ही काट डाला...। बिचारा सारी गर्मी अस्पताल में पड़ा रहा। गाँव का कोई सज्जन अस्पताल में मिल जाता तो पसेरी भर आँसू बिखेरकर बड़ी दयनीयता पटेल की करतूत बताता, कहता— काकाजी, साहब मेरा कोई कसूर नहीं है, मैं पापी क्यों किसी की बहन बेटियों को बुरी नजर से देखू...? उस दिन मैं दूध लेकर शहर जा रहा था कि रास्ते में उनकी लाडली की साईकिल खराब हो गई, ...मैंने पूछा तो कहने लगी— काका साईकिल तो पंचर हो गई, क्या मुझे स्कूल तक पहुँचा देंगे? मुझे असमंजस्य में देख पटेल की बेटी ने विनती के स्वर में कहा— काका मना मत करना मेरी परीक्षा छूट जाएगी। किसकी हिम्मत कि पटेल की बेटी की विनती ठुकरा दे....।

मैंने उसे साईकिल के आगे के डंडे पर बैठाकर स्कूल पहुँचा दिया पर बाबूजी शाम को जब घर आया तो सारे गाँव में अफवाहों की बाढ़ सी आई हुई थी। भला आप ही बताइए सरकार मेरी बेटी की उम्र की बाईसाँ को मैं क्यों ऐसा...अब तक बंटी की सिसकियाँ बढ़कर बाहर आने लगी थी। बिचारे गाँव वाले बंटी को सांत्वाना देने के अलावा क्या कर सकते हैं पटेल से कौन पंगा ले। आए दिन मौके पर गाँव वालों को उसकी ही चिरौरी करनी पड़ती है।

सल्तनपुर की चौपाल खत्म हुई, सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया की स्कूल की आबोहवा से ही लड़कियाँ भरमा जाती हैं सो आठवीं के बाद उनका स्कूल बंद....आखिर उनको घर ही तो आगे सम्भालना है। हालाँकि सल्तनपुर की पंचायत में ये बातें पहली बार नहीं कही जा रही थी पर भंवर सिंह जैसे दस

पाँच लोगों ने अमल ना करके लड़कियों को पढ़ने के लिए शहर तक भेजा था.....पर आज सबकी घिघ्घी बँधी थी।

यह वही समय है जब संविधान के मौलिक अधिकारों में शिक्षा के अधिकार को शामिल करके सारा सत्ता वर्ग गर्व से इठला रहा था। यही वह दौर है जब हरियाणा के खाप पंचायतों के डर से सरकार की घिघ्घी बंध गई थी। यह वही समय है जब मध्य प्रदेश के शिक्षा मंत्री को गाँव में लड़कियों की शिक्षा पर इतना गर्व हो गया था कि उन्हें भोपाल के चौराहे पर बिना साँस रोके लाड़ली लक्ष्मी योजना के बखान से फुर्सत नहीं मिल रही थी। यह वही दौर है जब बेतुल के चाँदपुर में केवल इसीलिए बच्चों को स्कूल में बैठने का अधिकार नहीं दिया जा रहा था क्योंकि वे ड्रेस खरीदने में सक्षम नहीं थे यह वही सलामत का समय है जब शिक्षा और भूख को एक सांसद भरी संसद में चंद रुपयों में तोलकर सामान्य जनता को उनकी औकात याद दिलाने में कहीं कसर नहीं छोड़ रहा था। पिछली पंचायत में पटेल द्वारा ऐसी बाते कहना भंवरसिंह को रुढ़िवादी मानसिकता लगी थी, तन्नाते हुए उसने कहा था— पटेल, यह बाबा आदम का जमाना नहीं है, अरे लड़कियाँ चाँद तक जा रही हैं क्या हम उन्हें स्कूल तक भी नहीं भेज सकते? अँवरसिंह द्वारा कहे गए कड़वे वचन पटेल को काफी दिनों तक चुने थे। आए दिन वह इन शब्दों के बदले की सोचता रहता, पर मौका उसे अब मिला था, वह भी तगड़ा....क्या मजाल कि भंवरसिंह आज गर्दन भी उठा सके।

चिमनी की डिबरी में चमकते दो मायूस चेहरे काफी देर से शांत बैठे हैं पर उन बुझे चेहरों में एक चेहरे पर आँसू की लड़ियाँ रह-रहकर बह रही थी जैसे कोई बरसाती पानी एक झटके से आए और एक झटके में रफूचक्कर...इन अश्रुकण की मालकिन लीली की माँ भगवती ही थी।

आज दस दिन हो गए पर लीली का कहीं पता ना चला, भगवती को अब तक आशा थी कि यह अफवाह गाँव वालों ने जलन से उड़ाई है, मेरी बेटी जरूर स्कूल के काम से कहीं गई होगी पर अब तो दस दिन होने को आए पर कोई खबर नहीं।

कल लीली के ताऊ शहर के स्कूल का चक्कर भी लगाने गए थे पर हेडमास्टर ने दो टूक में मनाकर लीली के ताऊ को टरका दिया था। हे लीली बैरन तूने क्या किया....हमें कहीं का ना छोड़ा....भगवती की सिसकियाँ जनरेटर के पंप की तरह लगातार फकफकाती रही जब तक भंवरसिंह ने उसे फटकारा नहीं— चुप रह रंडी..साली तूने ही तो उसे बिगाड़ा है, कितना अच्छा रिश्ता पास गाँव से आया था पर तू करमजलीः...सब चौपट कर दिया ...मुझे आज ये दिन ना देखना पड़ता। तेरी ही वजह से मेरे घर में बस्ती (आग) लगी है भंवरसिंह दाँत भींचते हुए भगवती की तरफ झपटते हुए कहने लगा— तब तो बड़ी अपनी रानी पर इतराए नहीं थकती थी ...भेजूंगी भेजूंगी फिर भेजूंगी, एक-एक को देख लूंगी, देखें कौण म्हारी छोरी को स्कूल बंद करै? भंवरसिंह का गुस्सा बढ़ने लगा— पढ़ ली न खूब ....समाज में बैठने तक का ना छोड़ा....।

भगवती की सिसकियों में पिछली बातों से अचानक तैश आ गया, बैठी-बैठी ही हाथ मटकाते हुए बोली— अरे हाँ म्हारी तो सब गलती है, थे तो दूध के धुले हैं। क्या मैंने उसे टूशन पढ़ाने के लिए भेजना शुरू किया था। ...पर उणी बखत म्हारी कौण सुणे.....तब तो कहते थे देख भगवती जमाना कितना बदल गया है, और फिर भई पढ़ी लिखी लड़की अगर टूशन पढ़ाकर अपना खर्चा निकाले तो क्या बुराई...और आज म्हारे ऊपर लाडसाहब बणे बैठे हैं .....चुप हो जा रंडी क्यों घर में बिघन मचाए हुए हैं भंवरसिंह भगवती का मुँह दबाते हुए चीखा .....म्हारे पर क्यों जोर अजमाए, उतना ही जोर है तो उन माटी को पकड़ जो थारी छोरी को उड़ा के ले गए भगवती ने रोनी आवाज में सारी बाते एक साथ कह डाली। अब तक भंवरसिंह बेटी की खीझ, अपनी पत्नी पर घूसे बरसाते हुए उतारने लगा.... घर में कोहराम मच गया। आस पास के लोग इकट्ठा होने शुरू हो गये लीली के ताऊ तब तक अंदर से भंवरसिंह को गरियाते हुए बाहर ले आए...लेकिन भगवती की आँसुओं से भरी गालियाँ वातावरण में गुंजायमान होनी शुरू हो गई, आधी रात तक यह कोहराम जारी रहा। इस तरह बिना कुछ खाए ही यह परिवार तितर-बितर होकर सो गया। सुबह भगवती ने मायके की बाट पकड़ी और बिचारा भंवरसिंह अकेला ही इस मनहूस घड़ी में मझधार की नाव बनकर थपेड़े खाने के लिए रह गया।

यह वही समय है जब सास बहू के सीरियल की टीआरपी, अचानक गिरकर, सत्य कथा से भरे सीरियलों ने ले ली थी। यह वही समय है जब माँ बाप अपनी बेटी को मारने के लिए इसलिए विवश हैं कि क्यों उसका प्रेम प्रसंग खुल गया था। यह वही दौर है जब कचहरी के चपरासियों की औकात आसमान पर चढ़ गई थी और तलाक के फार्म बनाते-बनाते हुए वकीलों को नहाए चार-चार दिन हो गये थे। यह वही समय है जब चंद्रमा के मोह से छुटकारा पाकर मानव मंगल पर जीवन की खोज में उड़ान भरने के लिए तैयार थे और साथ ही हजारों मनहूस रातों को चंगा करने के लिए फिर से बार डांसर रखी जाने लगी थे। यह वही समय है जब पति और पत्नी में इसलिए झगड़े हो रहे थे कि बच्चों के लिए उनके पास समय नहीं है। कुल मिलाकर यह वही समय है जब मनहूस घड़ी की सुइयाँ मनुष्य को बिना डोर नचा रही थी।

भगवती तो मायके चली गयी पर भंवर सिंह का माथा हल्का नहीं हुआ, उसे अपनी बेटी पर आवश्यकता से ज्यादा विश्वास था वह ऐसा कर ही नहीं सकती है, जरूर कोई साजिश हो। आजकल वह बिना खाए-पिए सल्तनपुर की गलियों में अपनी बेटी के बेकसूर होने की गाथाएं गाए फिर रहा है। कुछ लोगों ने अब तक उसे पागल भी घोषित कर दिया है .....।

परेड सामने से तेज चल ....परेड दाहिने मुड ....अबे सुअर तुझे अलग से कहना पड़ेगा ...पगड़ी धारी फौजी ने एक सुस्त लड़के को लात मारते हुए दाहिने मुड़वाया। इसी तरह दोपहर तक मार्चपास चलता रहा...ट्रेनिंग के आज तीस दिन पूरे हो गए हैं, केवल तीस दिनों बाद ही ये सारे लात खाते लड़के लड़कियाँ वरदीधारी फौजी बन जाएंगे।

विश्राम के समय लड़के और लड़कियाँ अपने-अपने केम्प में चले गये। आज सलमा के पाँव फूल गए थे... लक्ष्मी पीठ के बल औंधे पड़ी ठसक रही थी लड़कियों के सारे कैम्प में कड़ी ट्रेनिंग कारण लगभग सभी का यही हाल था। परंतु लीली अपने बस्ते से एक लिफाफा निकालकर लिखने में व्यस्त है। क्या थकी नहीं है। यार.....किस मिट्टी की बनी है...आह..सिम्मी ने अपने घुटने को दबाते हुए लीली से पूछा।

परंतु लीली किसी और ही बात से घायल थी। उसे शारीरिक कष्टों से ज्यादा दुख हो रहा था। अपने सहेलियों की तरफ मुड़ती हुई बोली— यार आज तीस दिन हो गए हैं, कितने ही लेटर लिख चुकी है। किंतु घर वालों की तरफ से एक जवाब नहीं आता.... सिम्मी ने बूट खोलते हुए कहा— अरे पगली अपने कप्तान के फोन से बात क्यों नहीं कर लेती.....कितनी बार कर चुकी हूँ पटेल के यहाँ .....पर वह हर बात कुछ ना कुछ बहाना बनाते या सब कुशल कहकर फोन रख देते हैं अरे ठीक है ना यार तीस दिन की बात है ट्रेनिंग पूरी हो ही जाएगी ...आह साले दड़ियल ने दौड़ाकर-दौड़ाकर मार ही डाला.... सलमा ने यह कहते हुए लीली को साथ लेकर पानी लेने चली गई। रास्ते में सलमा ने समझाइस के अंदाज में पूछा— यार तू जब से आई है तब से इतनी परेशान है आखिर घर वालों को तो बताकर तो आई होगी? अरे यार सलमा यही तो परेशानी है, जब कप्तान साहब फटफटी लेकर मुझे ट्रेनिंग के लिए लेने आए तब मेरे माँ और पिताजी मेरे ननिहाल गए थे। दो दिन तक बिचारे कप्तान साहब ने रास्ता देखा....फिर मैंने अपने गाँव के पटेल को ट्रेनिंग सम्बंधी बाते कहकर बिना बताए ही घर से आ गई हूँ इसलिए यार .....सलमा (चलते हुए)— तो मेरी जान तुम इसलिए परेशान हो.. हाँ यार सलमा, पता नहीं पटेल ने, घर पर जाकर कहा कि नहीं ..और सारी चिट्ठियाँ भी तो उसका लड़का पहुँचाता है, पिताजी को मिली कि नहीं .....बिचारे घर वालों की तो हालत खराब हो गई होगी अगर .....लीली वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी, उसके पहले ही उसका गला भर आया था।

बिचारे भंवरसिंह की हालत अब देखी नहीं जाती, भगवती भी कुछ दिन रूठकर वापस सल्तनपुर ही आ गई। बहुत धीरज बंधाती है अपने पति को, पर वह किस-किस का मुंह पकड़े... गाँव वालों ने तो नाक में दम कर दिया है।

कल ही शाँट लगाए हैं भंवरसिंह को, रात-दिन उसके सपने में लीली की ही बातें घूमती रहती है। शाम को पटेल जब समाचार लेने आया तो बड़ी देर तक दिलासा देता रहा— क्या करे भाई सब ओर कलयुग छाया है, लड़कियाँ ही पाप की जड़ होती हैं, उसे जितनी जल्दी हो अपने घर से रवाना करो इसी में भलाई है...इस तरह की कई बातों की सब्जबाग दिखाकर पटेल साफे को सीधा करता हुआ घर की ओर बढ़ने लगा....रास्ते में पटेल का मन बिल्लियाँ उछलने को हो रहा था— साला भँवरवा बड़ा बनता था ....इतनी सी बात पे मेरी लड़की को बदनाम करता-फिरता था...बेटे को अब आएगा छठी का दूध याद...याद रखेगा साला, किससे पाला पड़ा था।

इधर लीली की ट्रेनिंग के पूरे होने में केवल दो हप्ते बाकी थे, उधर भंवरसिंह के दौरे दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे, हालत यहाँ तक आ गई कि खाने-पीने की भी उन्हें सुध नहीं रही। बिचारी भगवती कब तक उधार पैसे ला-लाकर इलाज करवाए, अपनों ने भी आए मौके पर साथ छोड़ दिया.... जो लीली के ताऊ, भलमनसी की चादर बिछाए नहीं थकते थे वे ही अब जमीन लिखाने के बाद ही कुछ करने के लिए तैयार दिखाई दे रहे हैं। ऐसे समय में भगवती ने अपने मायके वालों से भी सहायता मांगी पर बिचारे, उनके स्वयं खाने के लाले पड़े हुए हैं आखिर कितने दिनों तक उनको परेशान किया जा सकता है। थक-हारकर भगवती ने अंत में भगवान के भरोसे ही भंवरसिंह को रख छोड़ा.....।

ये वही स्थितियां हैं जब एक पिता अपनी बेटी के दहेज की दहशत में ही स्वर्ग सिधार जाता है, और कानून केवल मूकदर्शक होकर मौतों से खेलता रहता है, ये वही स्थितियाँ है जब मानवता का खून इसलिए कर दिया जाता है कि वोट बैंक की राजनीति इसके बिना सम्भव नहीं है और बाप बेटे से रिश्ता इसलिए तोड़ देता है क्योंकि उसे टिकट दूसरी पार्टी से मिल जाता है। यह वही दौर है जब शर्ट की कालर से लेकर पैंट की जिप तक ग्लोबलाईजेशन का दौर छाया है भला ऐसे समय में मनुष्य के मन में स्वार्थ ना खपेगा तो क्या कद्दू खपेगा?

शायद लीली घर आने की उत्साह में जल्दी-जल्दी सामान बाँधे जा रही होगी, ट्रेनिंग पूरी हो गई। नौकरी भी पक्की।

बिचारी भगवती अपनी मनहूस बेटी को कोसते-कोसते थक गई है, भंवरसिंह के बचने की संभावना भी अब कम ही बची है, खेत बेचकर भी सारे रुपये लगा दिया पर भंवरसिंह की चिर निद्रा फिर भी नहीं टूटी।

अब भगवती पटेल के घर का झाड़ू पोछा करती है, पेट के खातिर.....पर उसे भी लगने लगा है कि कोई आन्तरिक कीड़ा उसकी उसकी नसों को रोज कुतरे जा रहा है पर वह हिम्मत बांधकर रोज की तरह भंवरसिंह की सेवा में लगी रहती है। इधर पटेल को भी तीन चार दिन से अजीबो-गरीब सपने आने शुरू हो गए हैं, कोई अनजान लड़की कभी उनकी छाती पर बैठकर गला दबाती है तो कभी चाकू के वार से उनका चेहरा छलनी करने की कोशिश करती है, पटेल को सपने में वह चेहरा रोज दिखता है लेकिन वे किसी को बताते ही नहीं, जरूर कोई गहरी बात है। कल ही पटेल का बड़ा लड़का रोनी सूरत बनाते हुए कह रहा था कि वे भी अस्पताल में भंवरसिंह चचा के समान लीली नाम रटते जा रहे हैं, उनकी बेहोशी टूटने के सात ही उन्हें रह-रहकर दौरे पड़ रहे हैं। डाक्टर ने साफ कह दिये है कि मन की बीमारी है.....उन्हें घर में ही रखिये वहीं कुछ सम्भावनाएं हैं। आधी रात के मनहूस घड़ी में भंवरसिंह की धमनियाँ अचानक ठण्डी पड़ गई, एक हिचकी के बिना ही उसके प्राण उड़ गए। भगवती तो काठ के समान हो गई ना रो पा रही है और ना ही बोल पा रही है केवल आँसुओं की बाढ़ सी लग रही है। भोर होते-होते पटेल की हालत भी खराब हो गई, जरूर कोई डरावना सपना देखा होगा। .....

धोती तक खराब कर दी है। इधर भंवरसिंह को जलाने के लिए भगवती लकड़ियों के लिए मारी-मारी फिर रही है उधर लीली बड़ी शान से फौजी वर्दी पहनकर गाँव की सीमा तक आ पहुँची है।

***

रुमी हाशमी, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

क्षितिज पार

डॉ. दर्शिनी प्रिया

घर में घुसते ही मिसेज सिंह ने माहिम के गालों पर झन्नाटे दर थप्पड़ रसीद कर दिया। दूध का पूरा गिलास उसके नन्हे हाथों से छूट कर दूर जा गिरा और समूचा संगमरमरी फर्श दूध से मिलकर और ज्यादा झक सफेद हो गया। उधर रसोई में बर्तन साफ कर रही मीरा के दिल में इस थप्पड़ ने एक साथ हजारों सुइयां चुभो दी। उसका कलेजा छलनी हो उठा।

ऐसा लगना बेज़ा भी तो न था। 4 साल का नन्हा माहिम उसकी इकलौती संतान जो थी जिसे उसने दूध के बदले अपने खून से सींच-सींच कर बड़ा किया था। मीरा अभी सोच ही रही थी की अचानक एक गरजती आवाज से उसे अपने कानों में पिघलता शीशा सा महसूस हुआ। "मीरा ये सारा दूध अभी का अभी साफ करो। मुझे 2 मिनट में पूरा कमरा साफ चाहिए और हां इस माहिम के बच्चे को जरा संभाल कर रखा कर। ये इसके बाप का मुफ्त खाना नहीं कि जो मर्जी आये चट कर जाये। आइंदा से ख्याल रखना।" इतना कहकर मिसेज सिंह पैर पटकती अपने कमरे में चली गई। मीरा बुत की तरह वहीं जड़वत खड़ी रही। वेडरूम से आ रहे टीवी के शोर ने उसके कमज़ोर आंसुओ की आवाज़ को दबा दिया। उसकी आँखों के कोर से लुढकते आंसू उस बेइंतहा दर्द को बयां कर रहे थे जिन्हें मीरा ने भोगा और सहा था। फर्श पर गिरे दूध को साफ़ करती वह अनायास ही अतीत के समंदर तक खिंची चली गई जहाँ मीलों तक दर्द के रेत पसरे थे।

अभी कुछ दिनों पहले की ही तो बात है जब मीरा के पिता लंबी बीमारी से जूझते-जूझते अचानक एक दिन इस दुनिया को अलविदा कह गए। उसके कुछ महीनो बाद ही अनुकंपा के आधार पर बाबूजी की जगह बड़े भैया की नौकरी लग गयी थी। बाबूजी के जाने के बाद से घर की जो माली हालत खराब होने लगी थी वो भैया के नौकरी में आते हीं पटरी पर आने लगी थी। पर जाने क्यों भाभी का रवैया अचानक बदल सा गया था। कल तक बाबू जी के भय से साँस न लेने वाली भाभी अब बड़े-बड़े कुलांचे भरने लगी थी। उनका कहर माँ बेटी पर लगातार बढ़ता जा रहा था।

भैया को धीरे-धीरे अपने नियंत्रण में लेकर उन्होंने घर का सारा बागडोर अपने हाथो में ले लिया। घर और संदूक की चाबियां माँ के हाथों से छीन ली गयी। ऐसे में माँ की मिल्कियत जाती रही। माँ अब चुप और गुमसुम रहने लगी थी। भाभी के गुस्सैल और अख्खड़ रवैये ने माँ को हथियार डालने पर मजबूर कर दिया। भाभी के सामने उनकी अब एक न चलती और भैया ने तो जैसे ख़ामोशी की चादर ही ओढ़ ली थी या यूं कहें जानबूझकर चुप रहने का ढोंग कर लिया था। वे भाभी के पक्के अनुयायी बन गए थे। उनकी अनुमति के बगैर न एक कदम बढ़ाते, न एक शब्द बोलते। उनकी हालत मदारी के उस बंदर की तरह थी जो अपने मालिक की डुगडुगी की आवाज पर थिरकता और इशारा पाते ही उछलकर बैठ जाता। थोड़ी राहत की बात ये थी कि नौकरी के चलते वे ज्यादातर बाहर रहते जिससे उन्हें भाभी की बिछाई बिसात पर चाल चलने का कम ही मौका मिलता लेकिन जब घर आते तो भाभी की बांधी गई झूठ और फरेब की काली पट्टियों के पीछे से उन्हें सब कुछ काला ही नजर आता या यूं कहें वे उजाले में कुछ देखना ही नहीं चाहते थे।

कालचक्र अपना पहिया घुमाता रहा और समय उसमे तेज़ी से सिमटता रहा। इधर वक़्त के साथ बढ़ता मीरा का कद भाभी को खटकने लगा था। मीरा उनकी आँखों की किरकिरी बन गयी थी। वो जल्द से जल्द उससे छुटकारा चाहती थी। भाभी की कुटिलता आखिर रंग लाई। उनके दबाब में आकर एक दिन भैया ने आनन-फानन में मीरा के हाथ पीले कर दिए। लाख मना करने पर भी वे नहीं माने थे और आखिरकार मीरा को विदा होकर एक ऐसे परिवार में जाना पड़ा जहाँ उसके सपनों की ज़मीन खोखली और नदारत थी। हालात कुछ ऐसे हुए कि एक बार जो मायके लौट कर आई दोबारा कभी ससुराल वापस नही लौटी। लेकिन वो अकेले नही आयी थी वो अपनी कोख में नन्हे माहिम का बीज भी साथ ले आयी थी। तब से मीरा यहीं थी अपने बाबूजी के पास। लेकिन नन्हे माहिम के जन्म से लेकर अब तक इन चार सालों में मीरा ने बेहिसाब जख्म और चोटें खाई थी। उन दिनों को याद कर वो आज भी सिहर उठती है। लेकिन मीरा की ज़िंदगी कभी ऐसी न थी। उसे याद है जब बाबूजी हुआ करते थे तो उसकी जिंदगी कितनी खूबसूरत हुआ करती थी। बिल्कुल परी लोक के परियों की तरह। कितनी खुश थी वो। उसका भैया, बाबूजी और अम्मा

का एक छोटा सा संसार था कैसे सुबह-सुबह माँ उसे बिस्तर से जगाकर दूध का गिलास पकड़ाती और बाबूजी मुहअँधेरे ही सैर पर अपने साथ ले जाते। कभी उसका कहना न टालते। उसने जब भी जो भी फरमाइश की, बाबूजी ने पूरी मुस्तैदी से उसे पूरी की। अम्मा तो फिर भी कभी कभार उसे झिड़क देती पर बाबूजी भूल कर भी उसे न डांटते। पूरे मोहल्ले में उसकी रौब थी। रक्षाबंधन पर उसके भैया का दिया तोहफा ही सबसे अव्वल आता। नये फैशन के जूते और कपड़े सबसे पहले मीरा के पास पहुँच जाते। मीरा के इस रौब से उसकी सहेलियों को उससे रश्क होता।

समूचे कस्बे में मीरा ऐसी पहली लड़की थी जिसने हाई स्कूल का इम्तिहान पास कर कॉलेज में दाखिला लिया था। सबको मीरा पर गर्व था। लेकिन बाबूजी के जाते ही जैसे मीरा के इस परिकथा का अंत हो गया। उसके जीवन के इंद्रधनुषी रंग जाने कहाँ गायब हो गए। भाभी के आगमन और बाबूजी के प्रस्थान ने सब कुछ बदल कर रख दिया था। मां ने तो जैसे खामोशी की चादर ही ओढ़ ली थी। भाभी के दिए गहरे जख्म नासूर बन माँ को तिल-तिल कर मार रहे थे। मीरा की भी हालात कमोबेश ऐसी ही थी। उसने अपनी इच्छाओं को पूरी तरह मार लिया था। अक्सर छुप कर बेबसी के आंसू रोती फिर खुद को सांत्वना दे चुप हो जाती। दिन भर भाभी के इशारों पर कठपुतली बनी फिरती। भाभी ने उसके नाजुक कंधों पर घर का सारा बोझ जो डाल दिया था। दिनोदिनों बढ़ते भाभी के अत्याचार ने मीरा की मासूमियत को कही दफ़न कर दिया था। वो अब ज्यादातर चुप रहती कोई प्रतिकार न करती। घर में काम के घंटों को आपस में बांट दिया गया था। सुबह के नाश्ते से लेकर दोपहर के खाने का सारा जिम्मा मीरा के कंधों पर था और शाम का खाना माँ ने संभाल लिया था। इसके अलावा भाभीजी की किट्टी पार्टियों के दौरान जमी महफिलों में डाइनिंग टेबल पर सजने वाली चाय बिस्कुट और नाश्ते के लिए मां को अलग से सख्त हिदायतें दी गई थी। एक तो बेचारी सारे दिन गर्मी में रसोई में परेशान रहती और अगर कभी गलती से कोई काम समय पर पूरा ना होता तो भाभी के ताने अलग से सुनने पड़ते। मीरा को मां की बेबसी का अंदाज़ा था लेकिन वो कर ही क्या सकती थी। दिन गुज़रते रहे।

इसी बीच चिंकी एक नन्ही परी बनकर भाभी की गोद में आई। माहिम और चिंकी साथ साथ बड़े हो रहे थे। हमउम्र थे लेकिन दोनों की हैसियत में ज़मीन आसमान का फर्क था। दोनों का अंतर बहुत गहरा था। माहिम को कभी दूध का गिलास नसीब नही होता वही चिंकी का गिलास मेवों और दूध से भरा रहता। चिंकी की आलमारी तरह-तरह के ड्रेस और महंगे खिलौनों से अटी पड़ी थी तो माहिम को मीरा के बनाए लकड़ी के गुड्डे से संतोष करना पड़ता। जहां चिंकी का एक नामी अंग्रेजी स्कूल में दाखिला हो गया था वहीं माहिम पूरे दिन मां के पल्लू के पीछे बंधा स्कूल जाने की ज़िद किया करता। मीरा ने इन सालो में जैसे जीवन की कई यात्राएं एक साथ पूरी कर ली थी। उसके जीवन की रेलगाड़ी बिना रुके बस भागती ही जा रही थी जिसकी ना कोई मंजिल थी ना कोई स्टेशन। कड़वाहट और पीड़ा ने उसे असमय बूढा कर दिया था। वो अपने बेरंग और नीरस ज़िन्दगी की लाश को पता नही कब से अपने बेजान कंधों पर ढोये जा रही थी।

फर्श साफ़ करते करते कांच का एक टुकड़ा मीरा की उंगलियों में धंस गया जिससे उसकी तंद्रा अचानक भंग हो गयी। वह अतीत की तंग और अँधेरी कोठरी इसे बाहर आ चुकी थी। पलकों पर लुढ़क आए आंसू कब के सूख चुके थे। वह उठने ही लगी थी कि तभी भाभी की आवाज कानों को चीरती उस तक पहुँची। मीरा, मीरा मै चिंकी को लेकर कुछ दिनों के लिए अपने मायके जा रही हूं। तुम यहां सब संभाल लेना। और हां मेरे पीछे तुम मां-बेटे ज्यादा जीभ चटोर मत बनना। वापस आकर मैं एक-एक चीज़ का हिसाब लूंगी। भाभी की इन बातों से मीरा को गहरा धक्का लगा। उसका सीना छलनी हो उठा। मन वितृष्णा और क्षोभ से भर उठा पर संयत रखते हुए उसने चिंकी को गले लगाकर कहा– "बेटा जल्दी घर वापस आना तुम्हारे बगैर तुम्हारी बुआ का बिल्कुल दिल नहीं लगेगा। भाभी ने झट से खींचकर चिंकी को अलग कर लिया था। वह सन्न रह गयी थी। भाभी के इस व्यवहार से मीरा के सीने पर गहरा आघात लगा। वह मन मसोस कर रह गयी। कुछ दिनों बाद भाभी ने चिंकी के बीमार होने की खबर भिजवाई। पता चला कि उसे कोई बड़ी बीमारी हुई थी और वह शहर के एक बड़े अस्पताल में भर्ती थी। उसके बचने के आसार कम थे। मीरा को अस्पताल का पता मालूम न था आनन-फानन में माँ को साथ लेकर किसी तरह अस्पताल पहुची। वहाँ चिंकी की उखड़ती सांसे देख ऐसा कर लग रहा था जैसे उसकी हालत बहुत नाजुक हो। तभी गलियारे से गुजरते हुए उसने भाभी को डॉक्टर के आगे गिड़गिड़ाते सुना, "डॉक्टर साहब मेरी चिंकी को बचा लीजिए मैं उसके बगैर एक पल भी नहीं जी सकती। प्लीज डॉक्टर साहब कुछ कीजिये।" डॉक्टर ने कहा है कि इससे ज्यादा हम और कुछ नही कर सकते। हम जो कुछ भी कर सकते थे कर चुके। अब जो करना है आप को करना है क्योंकि चिंकी के पास वक्त बहुत कम है। मीरा को समझते देर ना लगी की चिंकी बहुत बड़ी मुसीबत में है और उसकी जान पर बन आई है। उसने मन ही मन कुछ फैसला किया। उसके कदम डॉक्टर के केबिन

की ओर बढ़ चले। डॉक्टर से मिलकर उसे पता चला कि पिंकी को किडनीयो की गंभीर बीमारी है। उसके दोनों किडनिया पूरी तरह खराब हो चुकी हैं अगर जल्दी जल्द उन्हें बदला नही गया तो किसी भी पल पिंकी की जान जा सकती थी। ऐसे में मीरा को जल्दी से जल्दी फैसला लेना था बिना एक पल गँवाये उसने अपना फैसला डॉक्टर को सुनाया। सुनकर डॉक्टर हतप्रभ था। पहले तो उसने मीरा को समझाने की बहुत कोशिश और अपने फैसले पर दोबारा विचार करने को कहा, पर जब समझाने के बाबजूद भी मीरा टस से मस नहीं हुई तो डॉक्टर को अपनी राय बदलनी पड़ी और मीरा के अनुरोध को स्वीकारना पड़ा। उसने डॉक्टर से इस बारे में किसी से भी ना बात करने की गुजारिश की और मदद करने वाले का नाम व पता गोपनीय रखने का अनुरोध किया। डॉक्टर ने एक बार फिर मीरा को सोचने के लिए कहा लेकिन मीरा ने तो जैसे तय कर रखा था। वह अपने फैसले पर अडिग थी। मीरा आज अपने जीवन का एक बड़ा फैसला लेने जा रही थी। उसने माँ को फोन कर अस्पताल आने को कहा। उधर अस्पताल प्रशासन ने भी डोनर मिलने की बात कहकर मिसेज सिंह को जल्दी से अस्पताल पहुँचने को कहा। मिसेज सिंह अस्पताल पहुंच चुकी थी। उनके बार-बार पूछने पर भी पर भी डॉक्टर ने डोनर के बारे में कुछ नहीं बताया। अगले कुछ घंटे डॉक्टरों की टीम पर भारी पड़ने वाले थे। एक-एक पल कीमती था। अंदर ऑपरेशन थिएटर में पिंकी की खराब हो चुकी थी दोनों किडनियों का ट्रांसप्लांट चल रहा था और बाहर मिसेज सिंह का समय अस्पताल के गलियारे में बेचैनी से चहल-कदमी करते बीत रहा था। कई घंटों की लंबी खामोशी के बाद अचानक ऑपरेशन थिएटर का दरवाजा खुला और रूई और बैंडेज मे लिपटी चिंकी स्ट्रेचर पर लेटी दिखाई दी। चिंकी की चलती सांसो को देखकर मिसेज सिंह की जान में जान आई। उन्होंने नम आंखों से डॉक्टर का शुक्रिया अदा किया।

इस पर डॉक्टर ने कहा शुक्रिया मेरा नहीं उस माँ का कीजिये जिसने अपने जिगर के टुकड़े को आपकी चिंकी के लिए दाँव पर लगा दिया। डॉक्टर ऐसा कह ही रहे थे की तभी स्ट्रेचर पर एक जानी पहचानी बॉडी को ले जाते देख मिसेज सिंह उसकी ओर बेतहाशा दौड़ी। उसकी सूरत देख उनका कलेजा मुंह को आ गया। उनकी आंखें फटी की फटी रह गई। चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने समझते देर न लगी कि जिस मीरा को ताउम्र उन्होंने अपमान के सिवाय कुछ नहीं दिया आज उसी ने अपने जीवन का सबसे कीमती गहना उसे तोहफे में दे दिया था। मीरा का कद आज वाकई उनसे कई गुना ज्यादा बड़ा हो गया था अपने अनमोल त्याग और बलिदान से मीरा ने उन्हें उम्र भर के लिए ऋणी बना दिया। यह उसके जीवन का चरम उत्सर्ग था। उसने अपनी झोली खाली कर मिसेज सिंह की झोली भर दी थी। मिसेज सिंह जल्द से जल्द घर पहुँचना चाह रही थी ताकि मीरा से अपने गुनाहों की माफी मांग सके। वे घर की ओर भागी लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मीरा और मां के कदम हमेशा हमेशा के लिए किसी अनजान सफर पर निकल चुके थे। चिंकी को जिंदगी की नई रोशनी दिखाकर नन्हा माहिम दूर कहीं क्षितिज में अस्त हो चुका था।

***

त्रयम्बक शर्मा सुपुत्र डॉ. शिवम शर्मा, राजभाषा प्रकोष्ठ

परागपावन की कविताएं

1.

सभी फूलों को हवाओं ने जूठा कर दिया था प्रिये!
तो मैं खाली हाथ आया हूँ।

मैंने तुम्हारे लिए तुमसे एक कविता का वादा किया था
पर उसे पूरा करने की असमर्थता काई की तरह फैलती जा रही है

शब्दों के अर्थों ने मेरे वक़्त को धोखा दिया है
मैंने जिसे देश समझकर प्यार किया वह विचारों का कत्लगाह था
मैंने जिसे जूता कहा वह मेरे राहों का जासूस था
मैंने जिसे छत माना वह धूप और बारिश की दलाल निकली
अंत में

कोई भी चीज अपनी जगह पर सलामत नहीं है
तितली को तितली कहने में ख़तरा है
आग को आश्वस्त होकर आग नहीं कहा जा सकता

यह ऐसा समय है प्रिये!
चाँद जुगनू के घर दस्तख़त करने जाता है
और नदियाँ कुँओं के लिए महाकाव्य लिखने में व्यस्त हैं
सोहर मर्सिये से यारी करना चाहता है
और ओस धूप की दयालुता पर फ़िदा हुयी जाती है
यह ऐसा समय है प्रिये!

तुमने जब कहा कि इधर ब्रह्मपुत्र के पाट बढ़ आये हैं
इधर ब्रह्मपुत्र अधिक हत्यारिन हुई है
मैंने कहा इसे अभिधा में समझने की भूल मत करना
तुमने जिस मासूमियत से एक मोर से मोरपंख माँगा
मेरी आत्मा फफककर रो पड़ी
मैं आजकल हर सुन्दर और कोमल चीज को देखकर डरता हूँ
यह ऐसा समय है प्रिये!

सभी फूलों को हवाओं ने जूठा कर दिया था
यदि वे साबुत भी होते तो फूलों पर उनका हक़ है
हमारे पसीने और लहू के जाये फूलों पर भी उनका ही हक़ है
हर शाख पर, हर डाल पर
हर गेरुए पर, हर लाल पर
हर जड़ और जमीन पर
तमाशे पर, तमाशबीन पर
उनका ही हक़ है
एक कवि ने तीन दशक पहले पूछा था
मिट्टी, कुआँ, तालाब, देश में-से कुछ हमारा भी है?
तब से लेकर आज तक सारे कवि ख़ामोश हैं
मैं अपने पुरखों की तरह युगों से अभिशप्त हूँ खाली हाथ आने के लिए

तो खाली हाथ आया हूँ के
सभी फूलों को हवाओं ने जूठा कर दिया था प्रिये !

2.

तुम्हारी भूख से भयभीत हूँ
मैं तुम्हारे मुल्क से
और तुम्हारी दुनिया से
बुरी तरह थक चुका हूँ
ताज की तरह चांडाल हँसी
अपने सिर पर सजाए
तुम्हारी आत्माओं के दुर्गंधित रस्म-ओ-रिवाज
अब सहे नहीं जाते

तुम्हारे तराजू पर अपनी ज़िंदगी रखकर
साँसों का आवागमन देखना, बहुत ही शर्मनाक लगता है

कौन नहीं जानता कि ईश्वर तुम्हारा अश्लीलतम तसव्वुर है
धर्म सृष्टि का सबसे बड़ा घोटाला
और जाति बहुत गहरा कुआँ
जिसकी भयावहता पानी ढँकता है
मैं तुम्हारी कला से, और विज्ञान से, बुरी तरह ऊब चुका हूँ

यहाँ खून को एक थूक प्रतिस्थापित कर देता है
यहाँ चीत्कार को मंदिर का कीर्तन घोंटकर बैठा है
यहाँ सत्य को संसद में टॉयलेट-पेपर बनाकर
लटका दिया जाता है
जिससे सुबह-शाम जनता के चूस लिए गए सपने पोछे जाते हैं

मैं इस देश की उस आहारनाल से आया हूँ
जिसने सदियों तलक अन्न का चेहरा नहीं देखा

मैं तुम्हारी भूख से भयभीत हूँ

मुझे बख़्श दो
मेरे उन ताल-तालाबों के लिए
जहाँ माँगुर मछलियाँ मेरा इंतज़ार रही होंगी
किसी दिलदार दोस्त के साथ
सावन को अपनी क़मीज़ बनाकर
मैं उन दिशाओं में तैरने चला जाऊँगा
जहाँ मेरी बकरियाँ भीग रही होंगी
जहाँ किसी आम के पेड़ पर
अब भी मेरा दोहत्था अटका होगा
और पास ही मेरे मछरजाल की उलझनें
मेरी अँगुलियों को गोहार रही होंगी
मुक्तिबोध के बारे में मेरी कोई राय नहीं है
मार्क्स को मैं पहचानता तक नहीं
अंबेडकर का नाम ही सुना पहली बार
अज्ञेय होना शायद तुम्हारी सभ्यता का सबसे बड़ा ईनाम है
अब मुझे जाने दो
मैं ग़ालिब जुबान पर भी न लाऊँगा
और जायसी को युद्ध के निरर्थकताबोध का पहला कवि मानने की
ज़िद भी छोड़ दूँगा
मुझे जाने दो
मुझे भीरु कहो, भगोड़ा कहो, पर जाने दो
मेरे चले जाने पर मेरे गर्तवास का मतलब
शायद तुम समझ सको
शायद तुम कभी समझ सको
उस मोड़ दी गई बाँस की फुनगी की तनाव भरी थरथराहट
जिसने मुझे सिखाया था—
विनम्रता को बेचारगी में तब्दील होने से पहले
विद्रोह में बदल देना ही, ज़िंदगी का सुबूत है।

***

डॉ. वेद मित्र शुक्ल की ग़ज़लें

1.

अपनापन औ प्यार कहाँ,
मिलते अब दिलदार कहाँ?

शहरी आपाधापी में,
सब कुछ पर, घर-बार कहाँ?

चालबाजियां होती है,
दो औ दो अब चार कहाँ?

सच्ची बातें कहना अब,
यारों! शिष्टाचार कहाँ?

मजदूरों के लिए भला,
होते हैं त्योहार कहाँ?

इश्तहार ही भरे हुए,
इनके बिन अखबार कहाँ?

खलनायक हो या नायक,
सच्चे हैं किरदार कहाँ?

2.

जो भाईचारा जायेगा,
सब घर-चौबारा जायेगा।

बिल्ली यदि बिल्ली से झगड़े,
बन्दर को सारा जायेगा।

राजा के सिर पर सींग उगी,
अब नाई मारा जायेगा।

क्या जो आवाज उठायेगा,
वह यारो! कारा जायेगा?

ज्यों ही खामोशी बोल पड़ी,
पकड़ा हत्यारा जायेगा।

खरगोश रहा पीछे, आगे-
कछुवा ही प्यारा जायेगा।

दिन में बदली है छायी हुई,
फिर से उजियारा जायेगा।

धरती जो हिलती रहती है,
हो वारा-न्यारा जायेगा।

***

कविता

मिथिलेश कुमारी की कविताएं

1.

रेत सा फिसलता वक़्त
पहाड़ सा ऊँचा जमा काम
जिसके नीचे दबती जा रही मैं।

ये वक़्त की पुकार है या समाज की
कि अनथक दौड़ती रहूँ मैं।
दौड़ने में कहाँ देख पाई
वह चिड़िया जो अलविदा कह गई।

मुरझाते बाग़...
उजड़ता जंगल ...
टिटिहरी की टी टी...
गौरैया की पुकार...।
कहाँ जान पाई कि विलुप्त होती जा रही
इस धरती की जान।

नहीं बचा पाई मरती चीलों को
नहीं दे पाई अपना वक़्त माँ को
जब उनके घुटनों में दर्द था
पिता को जब कराहते रहे बिस्तर पर।

कि मुझे दौड़ना है
सब पीछे छूटता गया
मेरा वजूद पल-पल छीजता रहा
मैं बन गई एक निर्जीव रूप
नहीं दे पायी आकार सृजनता को।

बहुत वक़्त बाद समझ आया
जाना कहीं ना था
एक अंधाधुंध दौड़ थी।
चलती तो जिंदगी जी लेती
बचा लेती उस पेड़ को।
जिसकी मुरझाती पत्तियाँ रोज कुछ कहने को होती थीं
पर कहाँ कह पायीं कभी कुछ।
नहीं बचा पाई उन्हें
क्या बचा सकूँगी खुद को।
विकास का धुंआ
मेरी सांसों को करता रहा काला
मैं खुश होती रही गलत-फहमी में।

2.

भूल गए कि नहीं चला सकते नल
कबूतर या हिरन, शेर या बाघ।
सुखा डाले सारे तालाब।
गाद बना दिया झीलों को
और नदियों को बना दिया नाला।

भूख इस कदर बढ़ती गई कि
हवा में शोले भड़का देना
धरती को अंगारा बना देना
लड़ा देना मनुष्यों को
पाक़ मकसद बन गया।

बदल दिया हरियाली को बंजर में
आग को राख़ बना दिया
और जो जिन्दा थे उन्हें खाक़ बना दिया।
वक़्त की मीनारों को हमने, अपने पैरहन में चुन लिया।
हमारी आँखों ने तलाशा खुद को न कभी
दरवाजे झांकती रही पड़ोसियों का।

इस वक़्त ने हमें इन्सान कम, शैतान... बनाया?
मजा ही मजा है अब, हर मौत और सदमें में।
अफ़सोस वक़्त ने नहीं, हमने वक़्त को ऐसा बनाया॥

***

आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।

- गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर

बेक बेकोव की कविता

प्यार या जादू
जीवन जैसे सागर
और में डूबने गया
लडने शुरू गया
अँधेरे मेरे अंदर
खो गया था
आने से पहले तुम्हारे
आशीर्वाद है यह दुनिया
तुझ से सिख लिया मैं वह
कुछ बदल रहे
मेरी आत्मा के भीतर
आकाश है एक नई छाया
नीले रंग की।
दिल की धड़कन
तेज हो गई
समझ नहीं पा रहा हूं
जैसे मैं
और पक्षी गाना
शुरू करते हैं जब
मैं तुम्हारा हाथ पकड़ रहा हूं
और तारे दिखाई पड़ते हैं
हर बार तुम पास हो
वे इसे प्यार कहते हैं
लेकिन यह किसी तरह का जादू ...
मैं मुझसे मिलना चाहता हूं
दीवारों के बीच
रहने से दिक्कत
होता है लेकिन
आईने से देखके

बाहर की तरफ
मुझसे मिलना चाहता हूं मैं
बारिश के हर टपक
याद दिलाता उसे
तुझसे मिलने फिर
मुझसे मिलना चाहता हूं मैं
सूरज की किरणे
बस्टी शरीर पर
वक्त की हर पल
मुझसे मिलना चाहता हूं मैं
सपनों में वह
सुंदरता उसकी
जिसकी वजह से
मुझसे मिलना चाहता हूं मैं
अफसोस
देखा तुझे सपनों में
याद है तेरा हर करम
बैठे हैं झील के किनारे
नजराना था शफक पे
हाथ पे हाथ लगाए खुश
गीत हमारे गूंजती दूर
माँगा खुद से दिखाए फिर
वाही तेरी हंसी
वाही नजाकत
अब जीना बेकार तेरे बिन
भूल नहीं सकता वह दिन
तुझे चाहता, मिलान चाहता यह दिल
आँखों में आंसू, दिल में दर्द
आरजू हमारी रह गयी पीछे
कहाँ वादे, कहाँ हैं वह प्यार
साथ रहकर, साथ मरना हैं कहाँ
झूट की दुन्या में छोडकर
मिट्टी से मिलकर मेरा प्यार
कहाँ हो तुम, कहाँ मेरी जान
अलविदा कहता हूँ मेरा पहला प्यार
कहता हूँ लेकिन उम्मीद के साथ
अगले जन्म में मिलूं तुम्हारी साथ
यह रही खुद से हमारी आखिरी बात।

***

केदारनाथ सिंह* की कविता

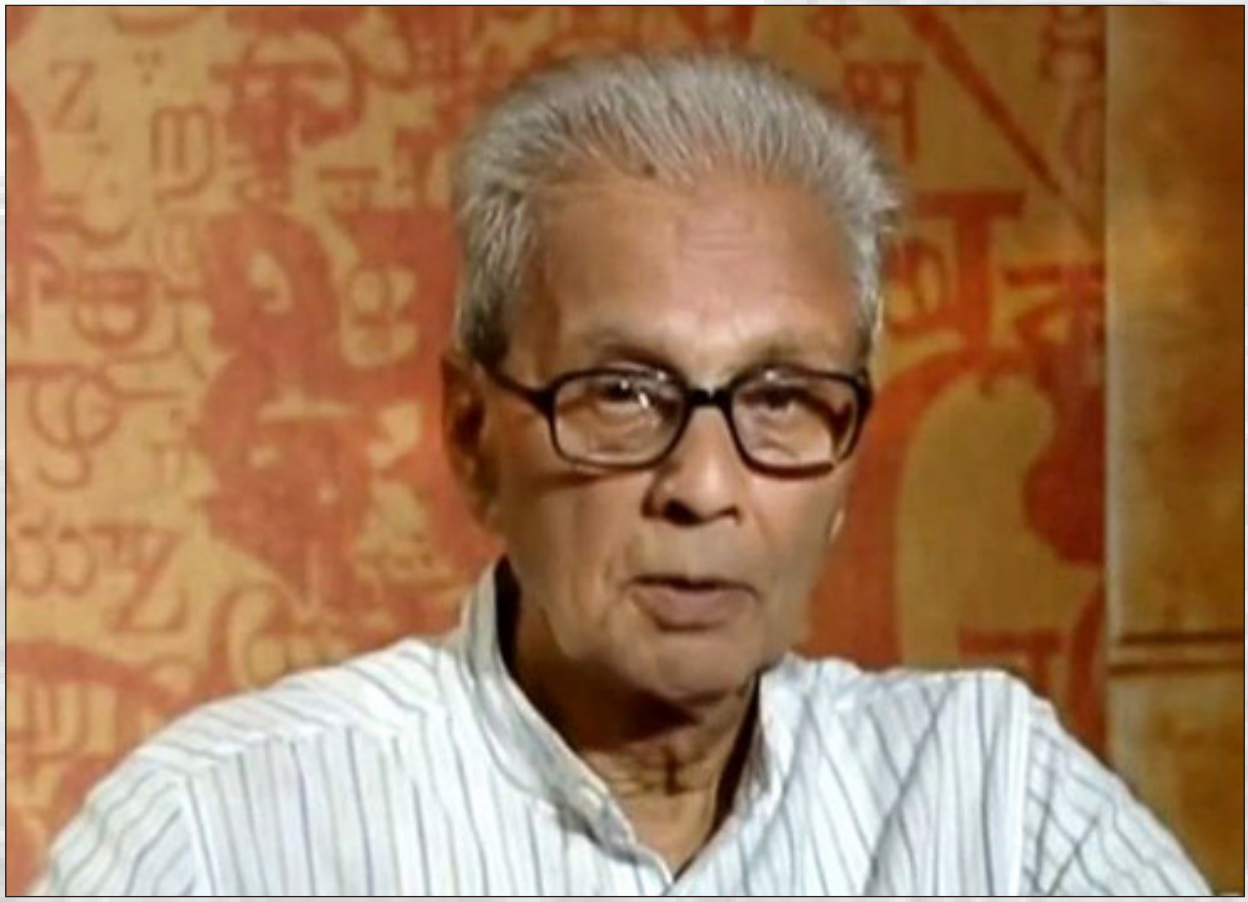

जे.एन.यू. में हिन्दी

जी, यही मेरा घर है
और शायद यही वह पत्थर जिस पर सिर रखकर सोई थी
वह पहली कुल्हाड़ी
जिसने पहले वृक्ष का शिकार किया था

इस पत्थर से आज भी
एक पसीने की गन्ध आती है
जो शायद उस पहले लकड़हारे के शरीर की
गन्ध है -
जिससे खुराक मिलती है
मेरे परिसर की सारी आधुनिकता को

इस घर से सटे हुए
बहुत-से घर हैं
जैसे एक पत्थर से सटे हुए बहुत-से पत्थर
और धूप हो कि वर्षा यहाँ नियम यह
कि हर घर अपने में बन्द
अपने में खुला

पर बगल के घर में अगर पकता है भात
तो उसकी खुशबू घुस आती है
मेरे किचन में
मेरी चुप्पी उधर के फूलदानों तक
साफ सुनाई पड़ती है
और सच्चाई यह है कि सबकी स्मृतियाँ

अपने-अपने हिस्से की बारिश से धुलकर
इतनी स्वच्छ और ऐशी पारदर्शी
कि यहाँ किसी का नम्बर
किसी को याद नहीं

विद्वानों की इस बस्ती में जहाँ फूल भी एक सवाल हैं
और बिच्छू भी एक शब्द
मैने एक दिन देखा कि अधेड़-सा आदमी
जिसके कन्धे पर अँगौछा था
और हाथ में एक गठरी
'अँगौछा'-इस शब्द से
लम्बे समय बाद मेरा मिलना हुआ
और वह भी जे.एन.यू. में

वह परेशान-सा आदमी
शायद किसी घर का नम्बर खौज रहा था
और मुझे लगा-कई दरवाज़ों को खटखटा चुकने का बाद
अब वह हो गया था निराश
और लौट रहा था धीरे-धीरे

ज्ञान की नगरी से
उसका उस तरह जाना मुझे ऐसा लगा
जैसे मेरी पीठ पर कुछ गिर रहा हो सापसप्
कुछ देर मैने उसका सामना किया
और जब रहा न गया चिल्लाया फूटकर-
'विद्वान लोगो, दरवाज़े खोलो
वह जा रहा है
कुछ पूछना चाहता था
कुछ जानना चाहता था
रोको....उस अँगौछेवाले आदमी को रोको....'

और यह तो मैंने बाद में जाना
उसके चले जाने के काफी देर बाद
कि जिस समय मैं चिल्ला रहा था
असल में मैं चुप था
जैसे सब चुप थे
और मेरी जगह यह मेरी हिन्दी थी
जो भरे परिसर में
अकेली चिल्ला रही थी...

*ज्ञानपीठ पुरस्कृत हिंदी कवि और आलोचक केदारनाथ सिंह जेएनयू के भारतीय भाषा केन्द्र में प्रोफेसर और अध्यक्ष रहे चुके हैं।

अनुवाद

युन्ना मोरित्स की तीन कविताएँ

(मूल रूसी से अनुवाद)

शीतांशु भारती

1. ध्रुवतारा

कौन इतना चमक रहा है? एक आत्मा।
किसने उसको सुलगाया?
बच्चों की बड़बड़ाहट, हल की कपकपाहट
अफीम के मैदान ने।

इतना कौन उफन रहा है? एक आत्मा।
किसने उसे उकसाया?
उमड़ते बवंडर, सनसनाती कोड़ों की आवाज़
किसी पत्थर-दिल दोस्त ने।

कौन वहाँ मोमबत्ती लिए खड़ा है? एक आत्मा।
मेज़ के पास कौन है?
एक नाविक और मछुआरा
उसी के गाँव का।

कौन है वहाँ आकाश में? एक आत्मा।
पर इतना परे क्यों?
अपने बिछड़े लोगों से मिलती है
और कहती हैं पूवर्जों से
कि बस... ऐसा ही है।

और वे उसे कहते हैं— मत दुःखी हो
मत तरस अपने हाथों और पैरों के लिए,
तू अब एक आत्मा है,— ध्रुवतारा
मछुआरों और नाविकों की दुनिया का। (1978)

2. तुम सुन रहे?

तुम सुन रहे? हमारी सांसों की आवाज़ को?
चाँद निकल गया है, चाँद-
बावला, छत पर सपनो की ताल पर डोल रहा है,
कविता भ्रमण कर रही है,
कुछ अजीब सा प्रलाप कर रही,
अपने अमिट पद चिह्न छोड़ते जा रही।

और यह मधुर पद चिह्न
हमें सीधा उसके पास ले जाती है,
जो, तलाश में है उस मौके की,
जब वह स्वयं को पूरी तरह जानना चाहता है,
पर यह कोई सरल मार्ग नहीं है,
और रास्ता सीधा भी नहीं
झूल रही हैं पंक्तियाँ
जड़ो से शाखाओं तक। (1980)

3. सूक्तियाँ बर्दाश्त नही होती मुझसे

सूक्तियाँ बर्दाश्त नहीं होती मुझसे!
उनके अति औपचारिक शिष्टाचार,
उनके लोहार खाने की आवाज़ पर विश्वास करते
हम फँस जाते हैं, मिसाल के लिए, ऐसे बकवास में
जैसे "कठिन नहीं होता नया होना, लेकिन कठिन है शाश्वत होना।"
पढ़ा मैंने इसे और घोंप दिया इस्पात का खंज़र
सूक्ति के शिखर पर, नज़र आया मुझे
बिल्कुल विपरीत अर्थ इन अलंकारिक शब्दों के पीछेः
कितना कठिन है होना शाश्वत, कितना कठिन है नया होना!

यह पढ़ा मैंने एक गायिका की,
एक दूसरे ही देश की हम उम्र औरत की डायरी में,
दिखाई दिया मुझेः बैठी है वह नव-चन्द्रमा की रौशनी में,
वीणा बजाते हुए वर्षा कर रही है मोतियों की।

इच्छा होती है इस निष्ठुर संसार में
(सभी के लिए निष्ठुर है जो) बताना यह निष्कपट खोज,
कितना कठिन है नया होना, उफ़, कितना कठिन है नया होना!
कितना कठिन है शाश्वत होना, उफ़, कितना कठिन है शाश्वत होना!

सूक्तियों की विषाद पूर्ण याद, दोहरे चेहरे का चोंचलापन—
कि कठिन है होना शाश्वत, और नया होना कठिन नहीं!
ज़रुरत नहीं महानता के मुखौटे को खींचने की
हीरे और मोतियों की तरह के झूठ बोलने की!

डरो, शब्दों के पीछे के मरुस्थल से डरो,
डरो, शब्दों के पीछे के इस्पाती तीखे खंजरसे!
कितना कठिन है होना शाश्वत, नया होना कितना कठिन,
और कितना अधिक कठिन है होना नया भी और शाश्वत भी। (1980)

***

विचारों की जलती हुई मशाल

धीरेन्द्र कुमार

जेएनयू का परिचय सिर्फ दिल्ली के दक्षिण में स्थित है। इस वाक्य से नहीं कराया जा सकता। यह एक विश्वविद्यालय है, शिक्षा का केन्द्र है, ये वाक्य भी हमारी थोड़ी ही मदद करते हैं। दरअसल जेएनयू, दिल्ली में विचारों की जलती हुई मशाल है। इसकी चार दीवारी में रात-दिन का कालचक्र सदैव अध्यनवयी सार्थक मंच और जगह-जगह सामूहिक बैठकों में सहायक है। अपनी स्थापना से लेकर आज तक इस विश्वविद्यालय ने हर क्षेत्र में अनूठे कीर्तिमान स्थापति किए हैं।

जेएनयू का परिसर अरावली पहाड़ी की शृंखला पर स्थित है। इसके उत्तर द्वार से लेकर पूर्वांचल तक छोटी-छोटी पहाड़ियों के अनेक शिलाखंड हैं। ये शिलाखंड परिसर में जगह-जगह बिखरे हुए हैं। गंगा ढाबा से लेकर प्रत्येक छात्रावास के आसपास और कुछ मध्य इन पहाड़ियों के उभरे हुए कूबड़े दिखाई पड़ते हैं। पी.एस.आर. (पाश्वसारथी रॉक) इन शिलाखंडों का सबसे मुकम्मल भाग है। जहाँ की पहाड़ियां पर बैठकर सुबह-शाम आकाश और जेएनयू के जंगल की हरियाली के मनोहर दृश्यों को निहारते रहना मन एवं चित को सुकून देता है। इन चट्टानों के सिर से गुजरते जहाजों की आवाज का कोलाहल खुशनुमा माहौल में खलल नहीं डालता अपितु वह चंद सेकंडों में संचारी भावों की तरह विलुप्त हो जाता है। पी.एस.आर. के उत्तर में मेजर ध्यानचन्द्र स्टेडियम है जहाँ सुबह-शाम अनेक छात्र और शिक्षक अपनी शारीरिक फिटनेस की जरुरत के लिए जाते हैं। दक्षिण में बी.आर. अम्बेडकर केन्द्रीय पुस्तकालय नौ तल पर खड़ा हुआ पूरे परिसर पर इतराता है। इतराए भी क्यों नहीं। उसका इतराना बनता है। पूरे परिसर में इससे ऊँचा कोई भवन नहीं। यह अपने नौ तलों में ज्ञान के सभी अनुशासनों के बोझ को सहेजे खड़ा एकमात्रा भवन है। यहाँ रोज ज्ञान का प्रकाश फैलता है। उसकी ऊष्मा से सैकड़ों अध्येता अपनी आत्मा को नहलाते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके पश्चिम में जेएनयू के अधिकांश छात्रावास स्थिति हैं, जिनके नाम हिन्दुस्तान की नदियों पर रखे हुए हैं। यह अपने आप में भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं। पूरब में कुलपति जी का आवास है। जहाँ समय-समय पर जेएनयू को संजोने संवारने के लिए कुलपति आते हैं और अपना योगदान देते हैं। जेएनयू के रिंग रोड के किनारे एक भव्य प्रशासनिक भवन है। यह पूरे परिसर का केन्द्रीय स्थल है। यहाँ के छात्र और छात्र-संगठन अपने अधिकारों के लिए समय-समय पर इसका घेराब करते रहे हैं। बिना किसी हिंसा के प्रशासन के सामने कभी प्रोटेस्ट तो कभी भूख हड़ताल करते हुए अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं। यह प्रशासनिक भवन जेएनयू का संचालक है। इसके पूर्व में नेहरू जी का स्टेच्यू और पश्चिम में विवेकानन्द का अभी-अभी नया स्टेच्यू बना है। जो यहाँ के छात्र और कर्मचारियों में प्रेरणा एवं स्फूर्ति पैदा करते हैं।

जेएनयू के संस्कृत, लौ एंड गवर्नेस और एडवांस स्टडीज के स्कूल को छोड़कर सभी स्कूल रिंग रोड़ के आकर के मध्य स्थित हैं। इन स्कूलों के भवन बिना किसी पलस्तर और सफेदी के लाल ईंट में अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यह कुछ-कुछ कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के भवनों की तर्ज बने हैं। स्कूलों की दीवारों पर लगे पोस्टरों पर अक्सर किसी बड़े कवि-शायर की पंक्तियाँ या किसी विचारक एवं क्रांतिकारी सुधारक के उद्धरण लिखे मिलेंगे। अपनी विचारधारा के अनुरूप यहाँ के छात्र-संगठन बहुत मेहनत से परिसर की मुख्य दीवारों पर ये पोस्टर लगाते हैं। यह विचारों को जानने की एक अच्छी संस्कृति है। जोकि कुछ वर्षों से कम हुई है। इन पोस्टरों में भारतीय और पाश्चात्य विचारों के संगम को देखा जा सकता था। इनसे पार्टियों की सोच, उनके विचार और कला के प्रति उनके नजरिए का पता चलता है।

जेएनयू भारत का अनूठा विश्वविद्यालय हैं जहाँ के परिसर में विविध विचारधारों के रंग खिलते हैं। भारत के विश्वविद्यालयों में छात्र-संगठनों की ऐसी सक्रियता कम देखने को मिलती है। यहाँ के छात्र सिर्फ अपने मुद्दों के लिए ही नहीं लड़ते अपितु राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर लगातार आवाज उठाते हैं। परिसर में इन मुद्दों बार बहस करते हैं। पब्लिक मीटिंगों में विशेषज्ञों को बुलाते हैं। विचारों की सहमति और असहमति का जबाब पर्चा लिखकर देते हैं। यहाँ का वह छात्र जो अपने को राजनीति से दूर रखता हैं, वह भी राजनीतिक बातें करता है। राजनीतिक सजगता जेएनयू के छात्रों में प्रायः देखने को मिलती है। लेकिन यहाँ भी छात्र-छात्राओं का एक वर्ग ऐसा है जो राजनीति से अपने आप को बहुत हद तक दूर रखता है।

ये भारत के साइलेंट मतदातों की तरह है। ये सिर्फ मतदान करने जाता है। ये वर्ग अपने विवेकानुसार परिसर के हित में जिस पार्टी को उचित समझता है उसे वोट करता है। पिछले वर्षों की तुलना में परिसर में राजनैतिक गतिविधियों में काफी कमी आयी है। लेफ्ट का जनाधार धीरे-धीरे कम हो रहा है। वहीं बाप्सा और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का जनाधार लगातार बढ़ रहा है।

प्रशासनिक भवन के बाद गंगा ढाबा, साबरमती लॉन में अक्सर राजनीतिक गतिविधियाँ देखने को मिलती हैं। किसी मुद्दे पर मार्च निकलना हो तो गंगा ढाबा से चन्द्रभागा छात्रावास की दूरी तय की जाती है। जलती हुई मशालें और जोशीले नारों के बीच पूरा परिसर गूंज उठता है। अक्सर साबरमती लॉन में किसी राजनेता या फिर अराजक तत्व के पुतलों को फूंका जाता है। तत्कालीन समस्या से सम्बन्धित न कितने राजनेताओं के पुतले यहाँ राख हुए हैं। आजकल साबरमती लॉन में राजनैतिक सक्रियता सबसे ज्यादा देखने को मिलता है।

जेएनयू में कक्षाओं का माहौल सकारात्मक है। यहाँ की पढ़ाई की पद्धति दूसरे विश्वविद्यालओं से कुछ अलग है। शिक्षक जितनी मेहनत से विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं उससे कहीं ज्यादा वह उनसे अन्य पुस्तकों को पढ़ाने में मेहनत कराते हैं। क्लास टेस्ट, अवधि पत्र तो हर विश्वविद्यालय में सामान्य है लेकिन संगोष्ठी पत्र कक्षा में प्रस्तुत करना और अपने बचाव में तर्क रखना ये विद्यार्थियों के लिए सबसे ज्यादा लाभकारी है। एम.ए. में दूर-दराज क्षेत्रों से आए विद्यार्थी जो प्रथम सत्र तक शांत रहते हैं। वह भी अगले सत्र तक मुखर हो जाते हैं। जेएनयू के लगभग शिक्षक विद्यार्थियों के लिए सर्व सुलभ हैं। आप अपने विषय से सम्बन्धित समस्या पर कभी भी बात कर सकते हैं। शिक्षक और विद्यार्थियों का रिश्ता भी इस परिसर को अनूठा बनाता है। जेएनयू के सभी अफसर और कर्मचारी विद्यार्थियों के कार्यों में मददगार हैं। विद्यार्थी भी समय-समय पर इन कर्मचारियों के अधिकारों के लिए लड़ते हैं।

दरअसल जेएनयू चार दीवारों से घिरा एक परिसर है। यहाँ प्रवेश परीक्षा पास करके आया विद्यार्थी लगन और मेहनत से पढ़ता है। लेकिन अपवाद यहाँ भी हैं। जेएनयू की खूबसूरती इसमें है कि यहाँ का छात्र अपने अधिकारों के प्रति सजग है। जेएनयू को जेएनयू बनाने में जितना शिक्षकों का योगदान है उतना ही यहाँ के विद्यार्थियों का है। वह आवाज उठाना जानता है। वह देशहित के मुद्दों पर सदैव एक सार्थक बहस आमंत्रित करता है। सरकार कोई भी हो जेएनयू सदैव विपक्ष की भूमिका निभाता है।

***

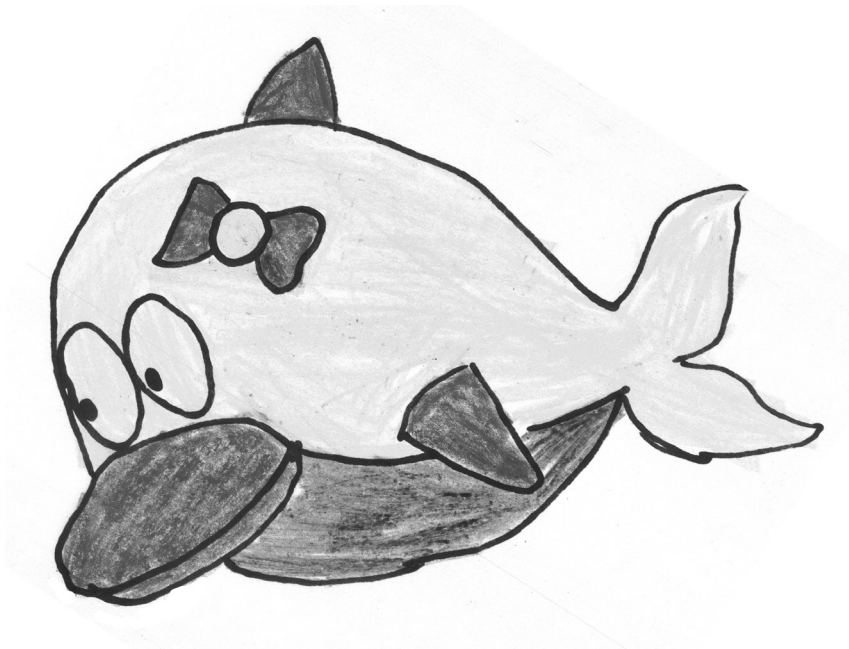

अनिरव, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

अपना विश्वविद्यालय

अभिषेक सौरभ

1.

आपने देखा है कभी
अपने विश्वविद्यालय को
केन्द्रीय ग्रंथालय के पाँचवें तल्ले से
उसकी चटकी हुई खिड़कियों की
चश्मनुमा आँखों में आँखे डालकर
कभी देखियेगा इत्मीनान से
बड़ा ही खूबसूरत लगता है
अपना समूचा विश्वविद्यालय प्रांगण
अपनी पूरी हरीतिमा
और जीवन्तता के साथ
शोध के पन्नों सी, परिपक्वता लिए हुए
अपनी बारीक बुद्धिमत्ता में
खोए हुए; बुद्धिजीवियों जैसी!!

बहुत सुबह-सुबह
अलसायी भोर की
अधजगी, उनींदी आँखों में
बचपन की याद लगती है प्रांगण!

दिन दोपहर ढ़ले
जब सूरज अपने शवाब पर होता है
तो किशोरवय सपनों जैसी
बड़ी खोई-खोई, बिखड़ी हुई

ख्वाबों की ताबीर लगती है प्रांगण!

दिन ढ़लती है– शाम आती है

शाम के धुंधलके में
सुंदरता, इस उपवन की
और भी बढ़ जाती है
बूढ़े बाबा की धवल दाढ़ियों जैसी
स्निग्धता छा जाती है पूरे प्रांगण में
और फिर गंगा से लेकर,
ब्रह्मपुत्र-पूर्वांचल तक
ढाबाओं की दुनिया गुलजार हो जाती है!

कभी देखिए इसे फिर
कन्वेंशन सेंटर के आँगन की
हरी घास पर लेटकर
गुजरती हुई रात में
आकाश निहारते हुए
सच कहता हूँ :

सिरहाने रखी ख्वाबों की पोटलियों के दरम्याँ
चाँदनी रातों में चाँद,
बहुत करीब नजर आएगा!

और रात अगर अमावस की हो
तो चाँद, अपना नसीब नजर आएगा!!

दामोदर की पदयात्रा,
जो तीर्थाटनों जैसी दुरूह है
और गुफाओं की सैर के साथ-साथ
इस बगिया के दिल का;
एक और कोठा–
बेहद सदाबहार है!

जी हाँ! पार्थ सारथी रॉक्स!!
पीएसआर की चट्टानें यूँ लगती हैं, जैसे;
समन्दर की छाती पर इक गर्वीला टापू!

और इस चट्टानी सफीने पर लेटे हुए हम
अपने-अपने समन्दरों के रॉबिन्सन-क्रूसो!!

ये प्रांगण! अपना प्रांगण!
हमारा-आपका-सबका विश्वविद्यालय प्रांगण!!
यूँ तो हर मौसम में शानदार लगता है,
पर जरा सा और हसीनतर हो जाता है
सावन की झिलमिलाती;
बरखा की बूंदों के बीच!
उस मौसम में,
उड़ती हुई हवाओं के साथ
उड़ती हुई बारिश की बूंदें

अरावली के इस पठारी-कंटीले
जंगलों के ऊपर
एहसास कराते हैं
मसूरी, ऊटी और शिमला सी
पुरकशिश फजाओं की
कसम से!
इससे जरा सा भी कम
महसूस नहीं होगा, आपको
हमारी इस हरी-भरी वादियों की
पथरीली आगोश में!

जो दादी-अम्माँ की गोद जैसी
बेहद नर्मो-नाजुक वा मुलायम है!!

2.

अरावली का चाँद

पूनम के चाँद को
देखा था पहले भी,
हमने, कई दफा
पर
अबकी देखा
जेएनयू में;
कावेरी के दाहिने से जो
सडक जाती है
ओल्ड ट्रांजिट हाउस की तरफ
उसी पर
सड़क के शुरुआत में ही
जहाँ वो हरियाणवी ताऊ जी
लगाते हैं दुकान
फलों की कभी-कभी
सुबह, दिन के पहले पहर
उसी सीधी सड़क पे
बिजली के खंभे के
जरा सा आगे
दोनों तरफ की पेड़ों के
झुरमुट की चादर पे
लेटा था चाँद
कल पूनम की रात में!!

उलझी थी उंगली
चाँद की
झुरमुट की जुल्फों से
स्याह काले केश
पुरकशिश पुरसकुँ से लबरेज
बेहद नरम
जज्बाती!
ज्यों ख्वाब दर ख्वाब
एक मीठा सा अफसाना
बुनता जा रहा था, चाँद
कल
पूनम की रात में!!

तिलिस्मी चाँदनी के
सम्मोहन के पाश में
बँधे हुए हम
बैठ गए
वहीं
कंक्रीट की खुरदुरी
रेशमी सड़क पर
ढाई बजे रात में
पढ़ने को
चाँद से
ढाई आखर प्यार के
जो कनखियों की भाषा में
बादलों की ओट से
पढ़ा रहा था चाँद
कल
पूनम की रात में!!

***

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं, वह उन्नत नहीं हो सकता।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

अजूबा टापू

सुमित कुमार चौधरी

जेएनयू में आना
किसी अजूबे से कम नहीं लगता
यहाँ के लोग
हमदर्द हैं, हमसफर हैं
चाहे मेस का वर्कर हो
या...
विश्वविद्यालय का कुलपति
यहाँ के ढाबे, ढाबे नहीं हैं
गाँव के चौपाल की तरह हैं
और
चाय की दुकान, रसोई घर की तरह
जहाँ पर घर की तरह मिलती हैं चटनियाँ
हालाँकि, यहाँ के हॉस्टल, हॉस्टल नहीं लगते
लगते हैं जैसे लोकशाही महल
जिसमें होती है दुनिया भर की हलचल
यहाँ के रास्ते हैं ऊबड़खाबड़
लेकिन ...
यहाँ के लोग ऊबड़खाबड़ रास्ते नहीं बनाते
बल्कि ...
यहाँ के लोग ऊबड़खाबड़ को बनाते हैं रास्ते
यहाँ की वादियाँ भी कुछ
जानी-पहचानी सी लगती हैं
गाँव के बगीचे की तरह
यहाँ कुछ पर्वत है
जिस पर बैठकर लोग
अपनी उदासी और खुशी को
आसमान में जहाजों की तरह उड़ाते हैं
यह भारत का वह टापू है
जिस पर हर कोई सवार होना चाहता है
लेकिन मैं...

***

पहल नैथानी, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

लेख

"गुण प्रधान नारी का भावनात्मक अस्तित्व"

डॉ. सत्येन्द्र कुमार

आधुनिकता दृष्टिकोण का प्रश्न है, न कि कालखण्ड का। इस संदर्भ में मातृसत्ता, जननी धर्म में निहित है। मातृरूपी नारी की प्रशंसा उसके गुणों की ही स्तुति करना है। गुण भाववाचक संज्ञा मात्र है जिसको न देखा जाए और न छुआ जाए, किंतु जिसको महसूस किया जाये। गुणधर्म केवल भावधर्म है, जो किसी पदार्थ, द्रव्य या जीव के संदर्भ में ही महसूस किये जा सकते हैं। गुण व अवगुण भाव द्रव्याश्रित न होते हुए भी द्रव्य संधारित हैं। किसी के सत्य वचन हैं कि गुण भाव सत्ता की जितनी अधिक गहरी प्रतिष्ठा द्रव्य में होती है, द्रव्य उतना ही महत्वशील होता है जिस द्रव्य में भावनात्मक सत्ता की प्रतिष्ठा नहीं है, वह द्रव्य संस्कारी द्रव्यों से वंचित रह जाता हैं एक शिक्षित व अशिक्षित में जो भेद होता है, गुण भावनात्मक होता है; क्योंकि उसमें द्रव्य दृष्टया साम्य होते हुए भी, जो भावदृष्टि से प्रार्थक्य है, वही उसको उत्तम व अधम बनाता है। यह भावानात्मक सत्ता ही है, जिसके कारण ही गणिका (वेश्या) एवं कुल स्त्री में भेद रेखा खींची गई है। माँ शब्द का माधुर्य कितना प्रिय है? माँ शब्द में गुणात्मक भाव है, जो अन्य सभी स्त्रियों से भिन्न है। यह माँ रूप स्त्री बन्दनीय और पूज्यनीय हो जाती है। केवल इस गुण शब्द 'माँ' के उच्चारण से ही स्त्री के दिलो-दिमाग में एक हलचल पैदा हो जाती है।

बहन शब्द की महिमा अपरम्पार है। इस शब्द सम्बोधन भाव का प्रभाव इतना गहरा है कि हृदय व मानस में नारी पवित्रता का स्नेह सिर गर्वान्वित हो जाता है। और बहन की आंखें सहसा भाई के प्रति स्नेह से गीली हो जाती हैं। यह द्रव्य में स्थिति मोहभाव की ही महिमा है। दूसरी ओर 'वेश्या' शब्द के श्रवण से ही वासना व कामुकता का विकृत भाव जागृत हो उठता है। और उस सर्व भोग्या नारी के प्रति कामभाव के अतिरिक्त अन्य और कोई आदरभाव नहीं आता। यह सब गुणभाव की महिमा है।

गुण संस्कारों का परिष्कृत भाव है, मानव मूल्यों की संवेदना है, आदर्शों का सम्मान है संस्कार शब्द ही परिष्कार का पर्यायवाची है। सुसंस्कार से सुशोभित गुण धर्म द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है और यह स्वभाव की महिमा ही है कि वह द्रव्य सुसंस्कृत कहलाता है। गुणों के आधार से ही कोयले की खान से निकला हीरा मुकुट की शोभा तथा सम्मान बढ़ाता है।

पुरुष व स्त्री के सन्दर्भ में गुण धर्म के स्वर सर्वदा मधुर होते हैं। पुरुष व स्त्री जन्म से तो जीव ही हैं; किंतु संस्कारों की महिमा का ही प्रताप है कि इनसे ही ये सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक व धार्मिक जीव बनते हैं। आहार, निद्रा, भय व मैथुन– चारों मूल प्रवृत्तियाँ मानव जाति व पशुओं में समान हैं, किंतु यह कलात्मक भाव प्रधान सांसारिक गुणी जीवन ही तो है, जो न केवल मनुष्य व पशुओं में ही अन्तर करता है, अपितु एक नर से दूसरे नर में, एक नारी से दूसरी नारी में भेद करता है। निद्राप्रिय नारी किसको सुहाती है, आलसी व अवगुणी पुरुष किसको अच्छा लगता है? सौम्य, कर्तव्यनिष्ठ, बलवान, स्वाभिमानी पुरुष सबके मन भाते हैं तो दूसरी ओर गुणशीला धर्मव्रता नारी सबको प्रिय है। यदि नर व नारी गुणहीन हैं, तो वे कर्महीन हैं और जगत में सकल पदार्थ होते हुए भी वे संस्कारहीन अवगुणी, अभागे कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते। जैसा कि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है–

"सकल पदारथ हैं जग माही। करमहीन नर पावत नाहीं।"

अर्थात संस्कारविहीन नर तो पशु से भी बदतर (बेकार) है और नर जो कर्मशील हैं वह नारायण सम पूज्य हो सकता है क्योंकि नर व नारायण में अन्तर अवश्य होता है, चाहे उसका उदगम एक ही क्यों न हो। जैसे कोयले की खान से कोयला निकलता है और हीरा भी, जैसे सीप में से मोती भी निकलता है और घोंघा भी। ठीक उसी प्रकार गुण प्रधान नर व अवगुणी नर में भारी अन्तर होता है, जैसा कि कथन प्रचलित है–

"नर नर में अन्तर, कोई हीरा कोई पत्थर"

यह गुणभाव भेद के कारण है, जबकि द्रव्य साम्य है। गुणहीन मानव बिना सींग, पूंछ का पशु है–

पशु की होत पनहिया, नर का कुछ न होय।
यदि नर करणी करे, तो नर नारायण होय॥

अर्थात 'करणी' में कृत्य भाव है, जो संस्कारों से प्रेरित आचरण का ही नाम है। पुरुष व स्त्री सदाचार के गुणभाव को धारण कर ही श्रीयुत हो सकते हैं, अन्यथा नहीं, केवल दैहिक ऊंचाई, धन-धान्य से परिपूर्ण होने से अथवा उन्नत पद व प्रसाद धारी होने से कोई स्त्री या पुरुष उन्नत नहीं माना जा सकता, जब तक कि वह गुणधर्म भाव से सुशोभित न हो। उन्नत का

मानदण्ड पैसा नहीं, अपितु गुणशील, मानव मूल्यों की व्यावहारिक साधना है। अमृत वचन है जो प्रासंगिक है–

उन्नतम मानसं यस्य भाग्यं तस्य सम्युनतम।"

अर्थात उन्नत मन, उच्च विचार जिसके होते हैं उसका ही भाग्य सब प्रकार से उन्नत होता है। दूसरे शब्दों में अवगुणी जनों का मानस उन्नत न होने से वे अभागे हैं, पतित हैं नरकीय हैं।

प्रवंचना के सागर का इस युग को निमंत्रणः

आज का युग गतयुग की निरंतरा है। नये युग में कुछ हो या न हो। भौतिक प्रवंचना का युग विडम्बनाओं, विरोधाभास, विषमताओं का युग है। आज कथनी व करनी में अन्तर है और इसको ही राजनीतिक धर्म की संज्ञा दी गयी है। शिष्टाचार की शिक्षा गणिका के कोठे पर मिलती है। कौए हंस बने घूम रहे हैं और अधर्म भी धर्मपरायणता के उपदेश देते हैं। आज तो प्रतिभा के शशि, दिवाकर स्वयं अभावों के तिमिर से आहत हैं, जिनको अन्याय का राहु व केतु निगलने के लिए तैयार बैठे हैं। गज व भुजंग जैसे बलशाली नर श्रेष्ठ भाग्य के सहारे अभावों के बंधन में बंधकर जीते हैं। आज की विडम्बना से सहज ही विश्वास होता है कि विधि ही इस कलियुग में बलवान है। हर ओर अनिश्चितता, अप्रत्याशिता है। मनुष्य, मनुष्य का अन्नदाता, भाग्यविधाता, स्वामी, श्रेष्ठी, शरणदाता सभी हैं। व्यवस्था ने अधिकार के क्षीरसागरीय विस्तारमय अधिकारों को कुछ वंचकों के हाथ में देकर नैतिकता को निर्वासित कर दुःशासन के हवाले कर दिया है और मायावी सूर्पणखा एक षोडशी का रूप धारणा कर, राम व लक्ष्मण को नयन वाणों से बींधना चाहती है। आज लज्जा, जो नारी जाति का कुलभूषण होता था, वह 22 कैरटीय और 24 कैरटीय सोने का रूप ले चुका है। इस युग के मानव को न जाने क्या हो गया है? इस युग में हर कोई भाग रहा है, हर एक को स्वर्णमृग की तलाश है। आज तरकश में तीर हो या न हों, हाथ में धनुष बाण हो या न हो, किंतु हर कोई तीस मारखां बना हुआ है। हर अयोग्य और कुपात्र महत्वाकांक्षी रूपी प्रेयसी को प्रसन्नचित करने की प्रतिस्पर्धा की दौड़ में दौड़ रहा है। तन सजा है, मन प्यासा है और आत्मा भूखी हैं। सबके सब तनावग्रस्त हैं, व्यस्त हैं, क्या चाहते हैं? वे मृग मरीचिका, मायावी के भ्रमजाल में फंसे हैं और अर्धनग्न विक्षित सी उद्देश्यहीन दौड़ दौड़ रहे हैं।

नारी का बिकाऊ व उबाऊ युग

पुरुषों का वासीपन जैसा होना, इस युग की पहचान है। कहने को तो आज का युग क्रियाशील व प्रतियोगितावादी है, किंतु गुणहीन, रसहीन व मानवीय संवेदनहीन युग है। आज का हर आधुनिक व्यक्ति कुछ प्रश्न लेकर चलता है कि यह वर्तमान/आधुनिक युग क्या वास्तव में क्रियाशीलता का युग है या भाव शून्यता का युग है? क्या आज का व्यक्ति जिसे क्रियाशीलता कहता है, वह कृत्रिमता के पीछे अन्धी दौड़ नहीं है? क्या यह सही नहीं कि इस युग में व्यक्ति ने अपनी सहज स्वाभाविक सौम्य, शांति खो दी है? क्या यह युग यंत्रीकरण का युग नहीं है? जिसमें व्यक्ति स्वयं किसी यंत्र का कलपुर्जा बनकर रह गया है? क्या आज के व्यक्ति के जीवन की रफ्तार उसकी घड़ी की रफ्तार और उसकी नाड़ी की धड़कन की रफ्तार से भी अधिक हो गई है? इस यंत्रीकृत युग में जब मनुष्य श्रमसाधना से प्रतिदिन दूर होता जा रहा है और उसको तन ढकने व सजाने तक के लिए कृत्रिम रेशों पर निर्भर रहना पड़ता हो, तो यह सहज ही विचारणीय है। कि क्या आज का मानव अपनी शिराओं का व्यापार न करता हो? क्या यह सच नहीं है कि इस युग में हर चीज बिकाऊ है और बिक रही है? मनुष्य की आह बिक रही है? धड़कन बिक रही है? उसके आंसू बिक रहे हैं? उसकी मुस्कराहटें बिक रही हैं? उसके शयन कक्ष में टंगे चित्र बिक रहे हैं? शैया की सिलवटें बिक रही हैं, माधुर्य की अस्मिता बिक रही हैं, आहटें बिक रही हैं? किसी के स्वप्न बिक रहे हैं? यहां तक कि शोक समाचारों के माध्यम से भावांजलियां व श्रद्धांजलियां बिक रही हैं? जन्मदिन बिक रहे हैं, मृत्युदिवस तक बिक रहे हैं? वह जी रहा हैः वाह से आह तक? गालिब को भूलते हुए, जिसने कभी कहा था–

'कौन कहता है? तेरी जुल्फ के सर होने तक।

खाक हो जायेंगे, हम तुझको खबर होने तक॥"

और यह भी आज का कड़वा सच है– प्यालों में से कड़वा जीवन रस पीकर अपनों को झुठलाने व भुलाने वालों का सच आज की तथ्यात्मक सच्चाई है–

"दर्द का हद से गुजर जाना है, दवा हो जाना।

आज इस व्यक्ति ने अपना जीवन-मूल्य व्यवस्था को हर क्षेत्र में व्यवसायीकरण कर रखा है उसकी पसीने की बूंदों का कोई मोल नहीं? उसके खून की कोई पहचान नहीं? आज अमीर, गरीब तथा असहाय व्यक्ति का भी धर्म पैसा ही है? झोंपड़ी से लेकर भव्य मकानों की चारदीवारी के बीच सपनों को कैद रखकर रहने वाले हर आदमी का तोल-मोल पैसा है। यह दो, यह लो, सभी जगह, यहाँ हर चीज बिकाऊ है। अजीब दृश्य है कि कौए के भाव हंस बिक रहे हैं और हंस मोती के स्थान पर दाना चुग रहे हैं यह सब समय का खेल है।

नारी का आधुनिक भोग्या रूप :

इस आधुनिक युग में नारी हों या पुरुष, दोनों जीवन की अन्धी दौड़ में एक दूसरे से पीछे नहीं है। इस यंत्रीकृत व्यवसायिक

युग में नारी भौतिकता के पीछे दौड़ रही है और अन्त में पुरुष के हत्थे चढ़कर आज वह भोग्या रूप में ही अधिक चर्चित है। आज की नारी ने जो स्वयं के लिए अपकृति की रचना की है, उस तथाकथित संस्कृति का नाम है– उपभोक्तावादी संस्कृति। आजकल नारी केवल प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गई है। उसकी गरिमा तो गलत बनाकर शराब की रंगबिरंगी बोतलों में बन्द कर दी गई है। जहां वह सरूर की रानी अपनी उन्मुक्तता के "चियर्स" के गीत गाती हैं। अश्लीलता तो बहुत कम वजन का शब्द है, इससे भी अधिक कोई और शब्द सम्भवतः शालीन संस्कृत भाषा व हिंदी भाषा शब्दावली में नहीं है। वासना की देवी कामुकता की प्रतिमूर्ति आज अपनी इतिहास प्रसिद्ध मोनालिसा मुस्कान व ताजमहल की चांदनी को चांदी के चंद टुकड़ों में बेच रही है। आज नारी रंगमंच पर कामक्रीडा के सारे हावभाव करती है और सांकेतिक भाषा में अपने अंग प्रदर्शन से वह सब कुछ बता देती है।

इस आधुनिकता में नारी को क्या मिला? अस्तित्व बोध या वात्सायन कामसूत्र के प्रशिक्षण के लिए खुली कामशाला या मधुशाला? क्या वास्तव में नारी का यही शाश्वत सहज स्वरूप है? जिसका बखान करते विश्व संस्कृति चली आ रही है। आज 'फ्राइड' के तलेभुने तंदूरी मनोवैज्ञानिक ज्ञान की व्यावहारिक परीक्षा ली जा रही है और इड/इबिडो, इगो सुपर गों के प्रश्नपत्रों से आधुनिक होने की परीक्षा ली जा रही है? आज का ज्ञान कहता है कि स्वप्न मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं के मधुर गीत हैं, जो अतृप्त इच्छाएं मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क में चली जाती हैं, जिनकी तृप्ति चेतन जगत में नहीं हो पाई है आज की इच्छाओं की तृप्ति व अतृप्ति की भी अपनी अनूठी व्याख्या है, यह सब 'इलेक्ट्रा काम्पलेक्स' व 'आडिप्स कॉम्पलेक्स' की देन हैं।

डॉ. कौलमेन ने अपनी पुस्तक 'एनोर्मल साइकोलॉजी : ए मॉडर्न व्यू ऑफ लाइफ' में इक्कीसवीं शताब्दी के युग के बारे में लिखा है– सत्रहवीं शताब्दी जागरण का युग था, अठारहवीं शताब्दी विवेक का युग था, उन्नीसवीं शताब्दी उन्नति/विकास का युग था, और बीसवीं शताब्दी चिन्ता का युग था,– अब इक्कीसवीं शताब्दी का युग प्रारम्भ से बता रहा है कि यह संवेदनहीनता, हिंसा, अविश्वास, निर्लज्जता का युग है। इस युग में मनुष्य हर प्रकार से नंगा होकर मनुष्यता व मानवता से दूर जाकर जीना चाहता है।

बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध ने प्रमाणित कर दिया था, कि यह युग चिन्ता का युग रहा है इसी युग में युद्ध अणुशस्त्रों से लड़ा गया था, द्वितीय विश्व युद्ध देखा था, तो इसके पूर्व रूस में क्रांति का सूत्रपात कराने वाला प्रथम विश्व युद्ध? इसी युग ने मानव के मूल्यात्मक व्यवस्था में परिवर्तन भी देखा। पूंजीवाद की व्यवस्था को टक्कर देने वाली समाजवादी व्यवस्था का भी उदय और पतन होते देखा। धर्म को अफीम मानने वाले विचारकों के देश में पुनः मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघरों के वर्षों से बन्द दरवाजों को खुलते देखा। इस गत युग ने मार्क्स का पलना देखा, तो उसकी रुग्ण शैया भी, जिसे केवल अब चीन व कुछ और नगण्य देश अर्धशुप्त शैशव की तरह सीने से चिपकाये चल रहे हैं। इस युग ने प्रारम्भ में पूंजीवादी व्यवस्था को आतंकित करने वाली धार्मिक कट्टरता व उग्रवाद को देखा है।

इस युग के उत्तरार्द्ध में तो विज्ञान ने देशों का वैश्वीकरण तथा भूमण्डलीकरण ही कर दिया, सुख सुविधाओं का अम्बार खड़ा कर दिया। सौन्दर्य प्रसाधनों के विभिन्न ब्रॉण्ड तैयार कर दिये, स्फूर्तिदायक असाध्य रोग निवारक औषधियों की खोज कर दी। उसने भी अपने आपको हाला के महासागर में डुबो दिया, प्यालों की हाला उसके जीवन की सहचरी बन गयी है। इस कड़वाहट को सोमरस माधुर्य की कल्पना के साथ पीकर अपने बिके व्यक्तित्व की कीमत चुकाने में लग गया है। हिंसा, मादकता, नग्नता, भौतिकता के झिलमिलाते पर्दे के पीछे सारा अनैतिक व्यापार निम्न प्रवृत्ति वाले, नवोन्नत, साधन-सम्पन्न, धनाड्य, अभिजात्य वर्ग ने उच्च समाज के व्यवहार को अपरम्परावादी उच्च संस्कृति का नाम देकर आदर्शहीन, नैतिक मूल्यविहीन विचार, भाव परम्परा को मान्यता दे दी है। आज 'पतन' नामक कोई शब्द नहीं है। इसकी कोई परिभाषा नहीं। आज तो सफलता को ही सब कुछ माना जा रहा है। सफलता साध्य के लिए गांधीवादी नैतिक साधनों व सिद्धांतों की आवश्यकता नहीं है।

भारतीय ग्रामीण नारी :

भारतीय सामाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ऐसा आभास देती है कि नगरीय सभ्यता में पले-बढ़े समुदाय की तुलना में ग्रामीण समुदाय ज्यादा सुखी व सन्तुष्ट है, क्योंकि आयातित पाश्चात्य कुकृतियां उनको अपने रंग में पूर्णतया नहीं रंग पाई हैं। महिलायें काम करती हैं, किंतु अपने पारम्परिक पारिवारिक कार्यों में ही लगी रहती हैं, जहां रात तो उनकी है, सुबह का प्रभात उनको शांति संदेश देता है। आधि-व्याधि को छोड़कर सामाजिक प्रदूषण से उपजी संस्कारहीनता ग्रामीण नारी को अपनी स्थिति से नहीं डगा पायी है, और यह नारी परम्परागत रूप से पुरुष की गति को नियंत्रित करने वाला कारक ही बनी चली आ रही है। गतिमान पुरुष के साथ स्थायी भाव की स्वाभिमानी ग्रामीण महिला कहीं भी प्रतिस्पर्धी नहीं हैं और न ही पुरुष भूमिकाओं में स्वयं को डालना व ढ़ालने का अप्राकृतिक व असहज दुःसाहस ही कर रही हैं। ग्रामीण महिला ने अपने व पुरुष के शरीर संस्थान भेद को विवेकपूर्ण विश्लेषित करके अभी सामान्यतया स्वयं को पुरुष गतिमान है और अपने महिला भावानुसार भूमिका का वरण किया

हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र की महिला न आत्मश्लाघा की तड़प से पीड़ित है, न आत्म प्रवंचना के मायाजाल में ही फंसी है, वह अपने संतोषधन के साथ ग्रहिणी रूप में ही वन्दनीय है। वह अपनी संतानों को विशुद्ध धार्मिक संस्कार देकर उसका मार्ग प्रदर्शन करने में व्यस्त है। उसे राजनीति के दल-दल में पुरुष द्वारा घसीटा जा रहा है, किंतु वहां पर भी वह बहुधा अपने पति के साथ ही रहती है, उसके पति से ही उसकी पहिचान है यह सदा स्मरण रखती है। वह नैतिकता, आदर्श व सिद्धांत की पुजारिन है और उसके व्यक्तित्व व कृतित्व में भारत की आत्मा का विश्वास है– ऐसा गांधी जी का विचार आज भी सत्य है। नारी पुरुष के जीवन में 'स्त्री' अर्थात स्थाई अस्तित्व भाव लेकर यथा नाम सार्थक करते हुए जीना चाहती है, किंतु नगरीय व ग्रामीण दोनों संस्कृतियों के मेल मिलाप ने गांवों के समाज में भी 'लिव इन रिलेशन' के खेल का प्रदूषण फैला दिया है जिसे समाज मजबूर होकर देख रहा है।

भौतिक साधन सम्पन्नता के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने पर यह तथ्य तो सर्वमान्य है कि पिछले युगों की तुलना में इस आधुनिक युग में सुख साधन प्रसाधन की प्रचुर मात्रा में वृद्धि हुई है। सभ्यता की परिभाषा करने वाले बाह्य जगत की समृद्धि के आधार पर उन्नति और विकास की परिभाषा करते हैं, और इस युग को सर्वसभ्य युग कहते हैं। आज लोगों की आय बढ़ी है। चिकित्सा की नवीनतम पद्धतियां विकसित हुई हैं। जिसके कारण मनुष्य की उम्र बढ़ी है। सूचना के नेटवर्क ने दुनिया को मोबाइल में समेट कर रख दिया है। शिक्षा जगत की सभी सूचनाएं जैसे– प्रवेश सूचनाएं, परीक्षाएं, पुस्तकालय सेवाएं, प्रलेखन सेवाएं, ऑनलाइन कैटलॉग, ई-रिसोर्सेज, तकनीकी सेवाएं इत्यादि को सूचना तकनीकों ने सभी के लिए आसान बना दिया है। मंद गति से ग्रामीण पुस्तकालयों की योजनाएं शीघ्र ही मूर्तरूप लेने वाली हैं। मनोरंजन के आधुनिक साधनों तथा संसाधनों ने भारत के समस्त गांवों में विश्व दर्शन को पहुंचा दिया है। प्रदर्शन पलक झपकते ही टीवी चैनलों पर देखे जा सकते हैं। सूचना क्रांति ऐसी हई है कि मोबाइल युग ने इस भूमण्डल के समस्त मानव प्राणियों को आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया है। नई-नई तकनीकी विकास के कारण सभी क्षेत्रों के विज्ञापनों में नारी के कोमल सौन्दर्य की रक्षा का भार उठा रखा है।

इस भौतिक विकास के युग ने व्यक्ति को चिन्ता व तनावग्रस्त बना दिया है। भौतिक चकाचौंध के आत्मिक आनन्द का अमृत कलश कहीं खो गया है। महत्वाकांक्षा व वैभवता के लिए सिद्धांतहीन प्रतिस्पर्धा ने मनुष्य को चिंताओं के पहाड़ के नीचे दबा दिया है। बच्चों की पढ़ाई की समस्या व लड़कियों के विवाह की समस्या, विवाहोपरान्त सामंजस्य की समस्या, वयस्क बच्चों के कामधन्धों या नियोजन की समस्या, मंहगाई की समस्या, इस मंहगे युग में सामाजिक सम्बन्धों, उत्तरदायित्वों व परम्परागत उत्सवों को मनाने की समस्या, घर की महिलाओं के वैभव प्रदर्शन के लिए धर्नाजन की समस्या, इत्यादि तरह-तरह की समस्याओं के कारण उनसे मनुष्य उत्तरोत्तर चिन्ताग्रस्त होकर बीमारियों को जन्म दे रहा है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष यह भी है कि मनुष्य ने नारी को घर से बाहर जाने की अनुमति तो दे दी है, किंतु उसके संशयी और संकीर्ण स्वभाव ने उसका पीछा नहीं छोड़ा है। उसने नारी की चंचलता से ही प्रणय निमंत्रण पाया है और इस तथ्य को भी नहीं भूलता कि उसके जीवन का चुम्बकीय आकर्षण जीवन के अन्तिम समय तक रहता है। आर्थिक समृद्धि व फैशनपरस्ती के लोभ में कौमार्य भंग हो जाता है या करवा लिया जाता है। कभी धनार्जन की विवशता बुरी लत बन जाती है, तो कभी सफलताओं के पीछे भागते हुए भी असफलताओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक दौड़ में पिछड़ा व्यक्ति, हीनभावना में जीता है। असमय बज्रपात से विषम परिस्थितियां आ जाती हैं। बंधु, सम्बन्धियों से मोह भंग हो जाता है। विषमता से अवसादपूर्ण परिस्थितियां दबाव बनाये रखती हैं। परिणामतः टूटन, घुटन, तड़पन, चुभन सब समाप्त प्रायः स्थिति, स्वप्न रेत के सागर में समा जाते हैं।

पुरुष तो येन-केन-प्रकारेण इन तनावग्रस्त परिस्थितियों का दबाव सहन कर लेता है। लेकिन कोमल मना, सहृदया, अश्रु सागर, स्वाभिमानी नारी तो कोमल तना होती है। वह कई बार इन परिस्थितियों में फंस कर उभरने का प्रयास करती है किंतु निष्फल हो जाती है। वह अपनी व्यथा/वेदना को किसी से कह नहीं सकती, अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, अपने आप से लड़ती रहती है, परिणाम स्वरूप जीवन रसहीन हो जाता है। उपेक्षा व अपेक्षा का द्वन्द्व उसके मस्तिष्क पटल की शाखा में अटके पुष्प की तरह अपना जीवन जीती है, किन्तु उसका विषादपूर्ण जीवन एक बोझ होता है। तनावग्रस्त मानसिकता के साथ जीती यह बीसवीं सदी को सह चुकी नारी, इक्कीसवीं सदी के डेढ़ दशक के बीत जाने पर भी दस्तक देते हुए कब संयम छोड़ दे कहा नहीं जा सकता। आज बेरोजगारी के साथ गरीबी बढ़ रही है। दरिद्रता महत्वकांक्षाओं को विद्रोहिणी बना देती है और यहीं अपराध का सहज जन्म हो जाता है। महादेवी वर्मा ने लिखा है कि– "सहज बुद्धि के कारण ही स्त्री ने पुरुष के साथ अपना संघर्ष नहीं होने दिया। यदि होने दिया होता, तो आज मानव जाति की कहानी ही दूसरी होती।"

***

मध्यवर्ग के दोहरे मूल्यों तथा मोहभंग की व्याख्या : काशीनाथ सिंह की कहानियाँ

डॉ. अंजुलता

साठोत्तरी कथा साहित्य के दौर में जब शहरी मध्यवर्ग कहानी के केंद्र में आ चुका था, काशीनाथ सिंह की कहानियाँ सबसे पहले गाँव और शहर के निम्न मध्यवर्गीय जीवन का परिचय देती हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन और साठोत्तरी कहानी की अन्य संवेदनाओं को भी उनकी कहानियों में स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। उनके लेखन ने कहानी की प्रगतिशील परंपरा को लगातार विकसित करने का कार्य किया है। उनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि संवेदनात्मक गहराई को हासिल करने के साथ-साथ उन्होंने अपनी राजनैतिक-सामाजिक पक्षधरता को किसी धुँधलके में नहीं रखा। उनकी विचारधारा की पहचान बहुत ही सहज है। काशीनाथ सिंह स्वयं स्वीकार करते हैं कि उनकी राजनैतिक गतिविधियों को वामपंथी और जनवादी विचारों के प्रकाश में पर्याप्त विकसित होने का मौका मिला। यह समय भारतीय जनमानस में बड़े परिवर्तनों के समय के रूप में जाना जाता है। देश में होने वाले राजनैतिक परिवर्तनों का समाज और व्यक्ति के जीवन पर जो प्रभाव पड़ रहा है उसे काशीनाथ सिंह की कहानियाँ सफलतापूर्वक व्यक्त कर रही थीं। ध्यान रखें कि यह मामला एकतरफा नहीं था। वामपंथी राजनीति के बिखराव और दोहरेपन को भी उनकी कहानियाँ बेहतरीन ढंग से उजागर करती हैं।

कहानी, उपन्यास, संस्मरण और आलोचना से इतर काशीनाथ जी ने परिवेश पत्रिका के संपादन के माध्यम से अपने सधी हुई वैचारिकी का भी प्रमाण दिया है। मोहभंग के कारण आदमी की टूटती-बिखरती संवेदना का चित्रण भी काशीनाथ सिंह की कहानियों में बखूबी देखा जा सकता है। विघटित मूल्यों से पैदा होने वाले आक्रोश को भी यह कहानियाँ बखूबी दिखाती हैं। विषम सामाजिक संरचना की कुरूपता, शोषण, अन्याय आदि का अनैतिक स्वरूप इनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन सब के बीच एक सामान्य इंसान, जिसे आम आदमी कहा जाता है, उसकी समस्याएँ क्या हैं, वह क्या और कैसे सोचता है– इसकी व्याख्या के लिए काशीनाथ सिंह की कहानियाँ हमेशा याद की जाएंगी। मुसई चा, डाकिया, भोला बाबू, सिद्दीकी, सुधीर घोषाल काशीनाथ सिंह की कहानियों के ऐसे ही पात्र हैं। किसी आदर्श की स्थापना करने के बजाय वे यथार्थ और सजीव पात्रों की रचना करते हैं। इनके पात्र किसी विशिष्ट प्रतिभा के धनी नहीं है। वे दुःख और क्षोभ के क्षणों में किसी दार्शनिक शैली का वरण नहीं करते। इनकी कहानियों के पात्र मोहभंग, आपातकाल तथा बाजारवाद को झेलने वाले, अपनी समस्त सीमाओं के साथ सामान्य से दिखने वाले मनुष्य हैं। इन पात्रों में केवल निराशा और हताशा नहीं है, वरन् प्रतिरोध का साहस भी है। काशीनाथ आपातकाल के युग में गंभीरता से लिख रहे थे। भारतीय लोकतंत्र के लिए यह एक नया मोड़ था, जब देश की सरकार ने ही लोकतांत्रिक स्तंभों को नष्ट करने का कार्य किया था। यह बिल्कुल नया परिदृश्य था। संविधान के प्रावधानों से सुरक्षित लोकतांत्रिक अधिकारों को वही छीन रहे थे जिन्हें इसकी रक्षा करनी थी। ऐसे समय में काशीनाथ सिंह जैसे रचनाकार अपनी कहानियों और दूसरी विधाओं में तद्युगीन सरकार की सीमाओं को मुखरता से रेखांकित करते दिखाई देते हैं। आपातकालीन युग में मनुष्य की हताशा और प्रतिरोध को समझने के लिए सबसे पहले हमें इनकी कहानियों की ओर देखना होगा। राजनैतिक संवेदनाएँ इनकी कहानियों के नेपथ्य में मौजूद रहती ही हैं।

इनकी कहानियों में तीन काल कथा, मुसईचा, आखिरी रात, चोट, लाल किले के बाज, जंगल जातकम्, सुख, दलदल, सूचना, सुधीर घोषाल, तथा कविता की नई तारीख आदि विशेष उल्लेख की माँग करती हैं। इन कहानियों में राजनीति के धूमिल होते चरित्र और हमारे प्रतिनिधियों की वैचारिक अस्थिरताओं, शाश्वत जीवन मूल्यों के बिखराव, स्त्री-पुरुष संबंधों में आने वाले बदलावों को सफलता के साथ चित्रित किया गया है। इस दौर के अन्य रचनाकार राजनैतिक परिवर्तनों और उससे प्रभावित अनुभूतियों के आलोक में समाज को वैसे ही नहीं देख पाते जैसे काशीनाथ जी देखते हैं। इसका संबंध राजनीतिक सचेतनता से है जो काशीनाथ जी को हासिल थी। इसी चेतना ने तीन काल कथा कहानी को जन्म दिया जो साठोत्तरी दौर की एक प्रमुख कहानी बनकर उभरती है। यह कहानी न सिर्फ अंतर्वस्तु की दृष्टि से वरन् रूप की दृष्टि से भी बहुत प्रयोगात्मक है। लेखक ने 'आधुनिक' समाज की विसंगतियों को अलग तकनीक से व्यक्त किया है। केवल गोस्वामी ने इस संदर्भ में लिखा है कि काशीनाथ सिंह की तीन काल कथा आजादी के बाद की नौकरशाही के विद्रूप चेहरे को उजागिर करता है। जन

साधारण की समस्याओं का उचित समाधान खोजने की अपेक्षा वह उसका उपहास करती है... स्थगित करने की कोशिश करती है। इस संवेदनहीन कार्य पद्धति में जन साधारण की क्या दुर्गति होती है कि उसके लिए जीवन और मृत्यु का फैसला स्थगित हो जाता है, वह इस कहानी में सशक्त ढंग से व्यक्त हुआ है।[1]

इस कहानी के कई अन्य पक्ष हैं। एक तरफ अकाल और दूसरी तरफ प्रधानमंत्रीजी का दौरा। तीसरी ओर भुखमरी की शिकार जनता जिसको लेखक कंकाल कहकर संबोधित करते हैं। कहानी में लेखक कहते हैं कि प्रधानमंत्री खुश रहती हैं क्योंकि लोग भूखे हैं, फिर भी उनको देखने के लिए सड़कों पर धूप में खड़े हैं। जनता प्रधानमंत्री के प्रति अपने पूरे विश्वास और विनय के साथ अकाल में मर रही है। अंत में प्रधानमंत्री का दस मिनट तक कार्यक्रम होता है। रामलीला मैदान में कहीं कोई तैयारी नहीं है क्योंकि बाहर से लाये जाने वाले फल, गजरे, केले के गाछ कंगालों के बीच सुरक्षित नहीं रह सकते और ऐसे भी यह कार्यक्रम जश्न मनाने के लिए नहीं है।[2] उपरोक्त पंक्तियाँ अपनी जनता के प्रति देश की सरकार के व्यवहार पर व्यंग्य करती दिखाई देती हैं। सरकार अपनी जनता की प्राथमिक आवश्कताओं को पूरा करने की बजाए चुनावी जोड़-तोड़ में व्यस्त है वह भी एक ऐसे समय में जब अर्थव्यवस्था बहुत कमजोर है। अकाल की मार झेलती सामान्य जनता मनुष्य न होकर कंकाल की भाँति रह गयी है। आपातकाल के दौर में सरकार और उनके समर्थक व्यवस्था के खिलाफ ऐसी कहानी लिखकर लेखक अपनी सामाजिक पक्षधरता और जिम्मेदारी को बखूबी निभाते दिखाई देते हैं। इंदिरा गाँधी की सरकार के द्वारा चलाए गये दमन चक्र को यह कहानी बेहतरीन ढंग से उजागिर करती है। यह वह दौर है जब देश की जनता महज वोटों में बदल गयी थीं और जनता की समस्याएँ मेनिफेस्टो तक सीमित रह गयी थीं।

काशीनाथजी की कहानी 'लाल किले में बाज' स्वातंत्र्योत्तर युग में वामपंथी आंदोलन की दिशा और दशा की तरफ इशारा करती दिखाई देती है। बदलती अर्थव्यवस्था और पूंजीवाद के दबाव का असर वामपंथी विचारधारा को भी लगातार प्रभावित करता रहा। वामपंथ का इस दौर में वह स्वरूप नहीं रहा जो प्रारंभिक दिनों में हुआ करता था। आंदोलन में सिद्धांत और व्यवहार की खाई लगातार बढ़ती जा रही थी। अपनी कहानी लाल किले में बाज के नायक जादू के विषय में वह लिखते हैं कि 'वे एक क्रांतिकारी संगठन से जुड़े हुए सुने जाते थे और हर समय उन्हें मुल्क में क्रातिकारी शक्तियाँ नज़र आती थीं। उन्हें बारहा लगता था कि यहाँ भी वैसी ही स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं जैसी सन् 1905 के जमाने में रूस में थी। उन्हें इस बात का अफसोस होता था कि मुल्क में कोई लेनिन क्यों नहीं है?'[3] इन पंक्तियों से जाहिर है कि जादू के चरित्र में न तो वामपंथ की समझदारी है और न ही उसके प्रयोगात्मक पहलुओं से ही वह ठीक ढंग से वाकिफ है। वामपंथ को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप गढ़ने में वामपंथी आंदोलन की जो असमर्थताएँ थीं यह कहानी उसकी ओर इशारा करती है। कहानी उस वैचारिक खोखलेपन को उजागिर करती है जो ढेर सारे साम्यवादियों में मौजूद रही है। यह कहानी इस सच को भी जाहिर करती है कि सारा दोष पूंजीवाद के मत्थे मढ़ देना ठीक नहीं है वरन् अपनी कमियों पर भी कुछ दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। मार्क्सवादी विचारधारा और जन-आंदोलनों से जुड़े होने के कारण लेखक की कहानियों में साम्यवाद के प्रति आस्था और प्रतिबद्धता दिखाई देती है। यही प्रतिबद्धता है कि पल-पल बदलते समाज और जीवन मूल्यों की कसौटी पर वे अपनी विचारधारा की व्यवहारिकता को कसना चाहते हैं। विचारधार जीवन के ठोस अनुभवों के साथ मिलकर ही परिपक्व होती है। खोखले सिद्धांत न तो व्यवहार में लाने योग्य होते हैं और न ही इतिहास में दर्ज होने योग्य। काशीनाथजी जीवन के ठोस अनुभवों के आलोक में ही मूल्यों, आस्थाओं और विचारधाराओं को समझने का प्रयास करते हैं।

काशीनाथ सिंह की एक महत्वपूर्ण कहानी है 'सुख' जिसमें गहरा व्यंग्यात्मक बोध है। कहानी के मुख्य चरित्र भोलाराम ने जब डूबते हुए सूरज को देखा तो जो सुख उनको प्राप्त हुआ वह उस सुख से सबको वाकिफ कराना चाहते हैं लेकिन कोई भी उनकी प्रसन्नता के साथ जुड़ नहीं पाता। सबके लिए सुख की परिभाषा अलग-अलग है, वरन् एक व्यक्ति का सौंदर्यबोध उसके समाज के साथ बदल जाता है। इस कहानी के संदर्भ में आशीष त्रिपाठी लिखते हैं कि "सूरज' को देखने का 'सुख' वस्तुतः इससे निकलकर ही प्राप्त होता है। सुख की प्रति के अतिरिक्त मोह भी अंततः उसी आत्मग्रस्तता का ही सूचक है, भोलाबाबू जिसके शिकार हैं। इस कहानी में पूंजीवादी विकास और जीवनचर्या में खोए व्यक्ति के प्रकृति और परिवेश से अलगाव की भी झांकी मिलती है। नेहरूवियन मध्यवर्ग की आलोचना इस कहानी को एक नया परिप्रेक्ष्य देती है।'[4] इस तरह इस कहानी के अनेक पहलू हैं। आत्ममोह से ग्रसित व्यक्ति, सामाजिक विडंबनाओं तथा विविध स्तरों पर सक्रिय विचारधाराओं की सामाजिक परिणति की तरफ लेखक बड़ी सहजता के साथ इशारा करते हैं।

इस दौर के कई लेखक नक्सलबाड़ी आंदोलन के समर्थक थे और कुछ उससे जुड़े हुए भी थे। काशीनाथ सिंह भी लंबे समय तक इस आंदोलन के प्रभाव में रहे। 'सुधीर घोषाल' तथा 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' इस विचारधारा के प्रभाव में रची गयी।

कहानी में मजदूर विद्रोह दिखाया गया है। सरकार और खदानों के मालिकों के प्रति सामान्य मजदूरों का विद्रोह। अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ मानवीय अधिकारों की स्थापना के लिए उनके यहाँ संघर्ष लगातार दिखाई देता है। 'लाल किले में बाज' भी में वे इस क्रांतिकारिता का मूल्यांकन करते दिखाई देते हैं। रचनाकार के लिए यह अत्यंत ही कठिन कार्य होता है कि वह जिस विचार को जी रहा हो उसकी आलोचना का भार भी उसी पर हो। उनकी कहानियों में आत्मालोचन की प्रवृत्ति को इसी दृष्टि से देखना चाहिए। यह कहानी सिद्धांत और व्यवहार के अंतर के युग में व्यक्ति विशेषों में विभिन्न कारणों से उत्पन्न क्रांतिकारिता की सीमाओं का मूल्यांकन करती दिखाई देती है। कहानी दिखाती है कि समाज के सामंती मूल्यों के बीच व्यक्ति विशेष की क्रांतिकारिता किस प्रकार धराशायी हो जाती है।

पाठक को यह बोध होता है कि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाये बगैर व्यक्ति के जीवन को बदलने की परिकल्पना एक मजाक जैसा ही है। कहानी का नायक जादू एक क्रांतिकारी संगठन से जुड़ा है। जीवन के प्रत्येक क्षण में वह क्रांति की संभावना ढूंढता रहता है। क्रांति तो नहीं आती लेकिन अपने प्रेमिका को छोड़कर से माता-पिता की मर्जी से विवाह करना पड़ता है। इस क्रम में अपनी प्रेमिका को समझाते हुए वह कहते हैं कि 'वे विवाह माँ-बाप का मन रखने के लिए कर रहे हैं। इससे ज्यादा उन्हें इस लड़की से कोई मतलब नहीं। जब माँ-बाप कर रहे हैं तो अपना संभालेंगे। वे जैसे ही नौकरी शुरू करेगें– सारी जिंदगी कावेरी के साथ दोस्त की तरह रहेंगे। वैसे ही जैसे सार्त्र के साथ सिमोन द बोवा रहती हैं।'[5] इस कहानी में प्रमुख पात्र जादू किसी जादू की तरह क्रांति लेकर आना चाहता है। समाज की सामंतवादी प्रवृत्ति से बेखबर वह लगातार अपनी ही धुन में मस्त है। इस प्रकार जादू का अव्यवहारिक रवैया पूरी कहानी को आच्छादित किये हुए है। किताबी सिद्धांतो को अपने जीवन का सिद्धांत बना चुके जादू सही और गलत का भेद अपने जीवन से मिटा चुका है। और अंत में वह कुंठा का शिकार हो जाता है। तत्कालीन वामपंथ की दिशाहीनता और विचारधारा की छद्मता को लेखक विषय वस्तु बनाकर कहानियाँ लिखते रहे हैं। यह कह पाना कठिन है कि इस कहानी को मात्र वामपंथी विचारधारा की आलोचना के रूप में पढ़ें या इसे कहानीकार के आत्मालोचन के रूप में भी देखें।

आधुनिकता का बदलता स्वरूप इस युग की प्रमुख विशेषता है। काशीनाथ सिंह की कहानियाँ इन बदलते आधुनिक जीवन मूल्यों की व्याख्या प्रस्तुत करते दिखाई देतें हैं। खास तौर से कविता की नई तारिख तथा आखिरी रात कहानी में लेखक ने इस संदर्भ में बहुत गौर से विचार किया है। आजादी के बाद के बदलते सामाजिक मूल्यों, व्यक्ति और समाज के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन आदि इस कहानी के केंद्र में है। यह कहानी इस पर विचार करती है कि किस प्रकार बदलते आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने के बीच मध्यवर्ग की आकांक्षाएँ धीरे-धीरे मूल्यविहीन होती चली जा रही हैं। इच्छाओं का अंत दिखाई नहीं देता। एक ऐसे दिशाहीन समाज का स्वरूप निर्मित होता है जिसका कोई लक्ष्य नहीं है। कविता की नई तारिख में लेखक लिखते हैं कि 'नेता लोग काम भी गलत करवाते हैं– अपनी नेतागिरी के रौब में। कभी-कभी पैसा भी देते हैं लेकिन हल्ला ऊपर से कि देश में घूसखोरी बढ़ रही है, बेईमानी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। जब तक इन्हें रोका नही जाएगा देश की तरक्की नहीं हो सकेगी। क्यों? क्यों ऐसा करते हैं ये? क्योकि इन्हें चुनाव भी लड़ना पड़ता है। ...विश्वास कीजिए सेठ इनसे लाख दर्जे अच्छे होते हैं।'[6] कहानी की इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि समाज के आर्थिक ढाँचे के बीच बदलते सामाजिक मूल्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ का क्या स्थान है। धीरे-धीरे संयुक्त परिवारों से एकल परिवारों की तरफ जाने वाले भारतीय समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ का महत्व अधिक बढ़ गया। इन्हीं व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति तक उनके सारे क्रिया कलाप सिमटे हुए से दिखाई देतें हैं। कविता की नई तारीख इन्हीं सामाजिक और पारिवारिक इच्छाओं में सिमटे संभ्रांत व्यक्ति के जीवन पर आधारित है। यह कहानी दिखाती है कि आधुनिक जीवन मूल्य किस तरह व्यक्ति को उसके सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों और जीवन मूल्यों से विलग करते दिखाई देतें हैं।

इन कहानियों में लेखक की रचनात्मकता, कहानी कहने की कला, यथार्थ की गहरी समझ और परिस्थितियों की सटीक अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है। पात्रों के संयोजन और उनके द्वंद को लेखक बेहतरीन ढंग से उभारने में सक्षम हैं। वे यह दिखाने में समर्थ हैं कि सामंतवाद और पूंजीवाद का गठजोड़ किस प्रकार मनुष्य को लगातार क्रूर और अमानवीय बना रहा है। इस कार्य में प्रेमचंद सिद्धहस्त थे। काशी की कहानियाँ इस अमानवीय समाज में ही जी रही हैं। उस अमानवीय प्रक्रिया को घटते हुए देख रही हैं। उनकी कहानियों में 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' शिल्प और अंतर्वस्तु की दृष्टि से बहुत अलग ढंग की कहानी है। इस कहानी में प्रभुत्वशाली वर्ग के ऊपर एक प्रकार का व्यंग्य किया गया है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि इस प्रभुत्वशाली समुदाय की प्रवृत्तियाँ, शौक, इच्छाएँ तथा संतुष्टि उनके वर्ग से कितने गहरे संबंधित हैं। इस कहानी में शौक साहब की आदत है कि वह थूकें और वह किसी के सिर पर पड़े। इस तरह के शौक पालने वाले पात्र संभ्रांत और प्रभु वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। जबकि इस कहानी

का नायक एक निरीह युवक है जो संघर्षशील जनता का प्रतीक है। वह किसी के पक्ष में या विपक्ष में नहीं खड़ा होता है वरन् शांत रहकर शोषण का विरोध करता है। यह कहानी पाठक को लगातार शोषित होने का एहसास कराती है। यह एहसास उन्हें होता है जो पूंजीवादी समाज में संभ्रांत कहे जाने वाले परिवारों द्वारा चारों तरफ से होने वाले प्रहारों को वहन करते हैं। शोषण की यह व्यवस्था सबके लिए किसी ना किसी प्रकार को झुनझना तैयार रखती है जिसको पकड़कर शोषित व्यक्ति खुद के मुक्त होने का एहसास मात्र कर पाता है। इस कहानी में शौक साहब की थूक अपने ऊपर लेकर किसी को खीज नहीं होती है। बल्कि लोग तैयार रहते हैं कि खड़की से निकलने वाली थूक की एक बूंद ही सही उनके ऊपर पड़े। इस कहानी में लेखक कहते हैं कि 'जब शौक साहब की निशानेबाजी अपने शबाब पर थी, वह दिन आ गया, जिसे कभी नहीं आना चाहिए था और जिसके बारे में किसी ने सोचा तक नहीं था। एक मरियल सा सींकिया नौजवान, जो महीनों से गली में आ रहा था और कुरता-धोती लेते लोगों को देखा करता था, एक रोज एक घिनौनी हरकत कर बैठा। उसने ऐसे शख्स को, जिसपर पान की पीक बस गिरने गिरने को थी, जाने किधर से दौड़कर धक्का मार दिया, वह आदमी लुढ़कता हुआ दूर जा गिरा और पीक मोरी के पानी पर छपाक से गिर गया।'[7] शौक साहब की पीक किसी को खराब नहीं लगती और ना ही कोई इसके खिलाफ आवाज उठाता है। इस कहानी में पीक तिरस्कार का प्रतीक है। वह जब निरर्थक चली जाती है तो वह इसे बर्दाश्त नहीं कर पाते। इस कहानी में जनता एक साथ इसका विद्रोह नहीं करती बल्कि एक नौजवान अकेले इसका विरोध करता है। यदि नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रकाश में इसे समझा जाए तो कहीं न कहीं इस आंदोलन की सीमाओं को भी यह कहानी रेखांकित कर ही देती है।

काशीनाथ जी की कहानियाँ प्रगतिशील चेतना से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त जातिवाद, वर्ग विभेद तथा सामाजिक विषमताओं को व्यक्त किया है। वे इसे रेखांकित करते हैं कि बदलती राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच मनुष्य के आपसी संबंध किस प्रकार प्रभावित हो रहे थे। इनकी कथा योजना में एक प्रकार की लयबद्धता दिखाई देती है जो पाठक को बांधे रखती है। इनकी कहानियों के शिल्प और तकनीक की मौलिकता पर ध्यान देने की आवश्यकता है। भाषा के स्तर पर उनकी कहानियों में अत्यधिक मौलिकता है जो अंतर्वस्तु के साथ लयबद्ध है। उनके यहाँ भाषा का इतना जीवंत प्रयोग है कि तारतम्यता कभी खंडित नहीं होती। इस दृष्टि से लेखक प्रेमचंद की परंपरा के काफी नजदीक दिखाई देते हैं। इस भाषा की व्याख्या लिपि और व्याकरण के दायरे में रहकर नहीं की जा सकती। साथ ही लोक जीवन और लोक परंपरा के साथ जुड़े बगैर इस भाषा के सौंदर्य को उद्घाटित नहीं किया जा सकता। उसमें कहीं भी जटिलता और उबाऊपन नहीं दिखाई देता। यह अकारण नहीं कि काशीनाथजी की रचनाएँ व्यापक जन समुदाय तक पहुँचती है। भाषा का देशज स्वरूप इनकी रचनाओं को और भी जीवंत बना देता है।

संदर्भः

1. केवल गोस्वामी (सं.), श्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ 1960-70, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2010, पृ. 8
2. आशीष त्रिपाठी (सं.), खरोंच, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2014, पृ. 85
3. काशीनाथ सिंह, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 49-50
4. आशीष त्रिपाठी (सं.), खरोंच, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2014, पृ. 8
5. वही, पृ.124
6. वही, पृ. 51
7. वही, पृ.135

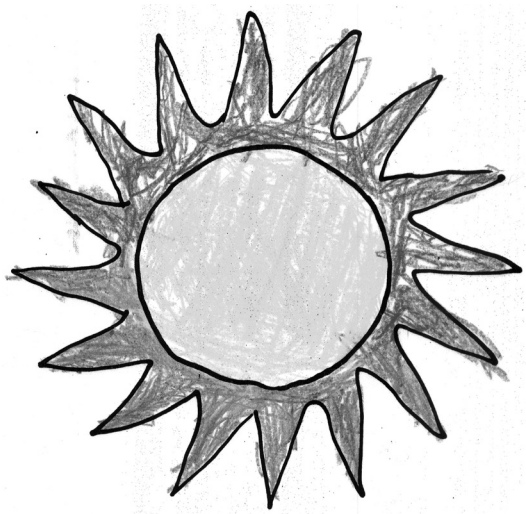

अथर्व सिंह, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

***

हिंदी कविता के विकास में अनुवाद की भूमिका

डॉ. अनुराधा पाण्डेय

हिंदी साहित्य के संदर्भ में साहित्य लेखन में काव्य लेखन की परंपरा बाकी विधाओं की तुलना में सबसे प्राचीन रही है। कविता के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों का मानना है कि– मानव ने अपने विकास की प्रारंभिक अवस्था में जब बोलना शुरू किया तो वह भी काव्य का ही रूप था। कविता को मानव की सबसे गहरी संवेदनाओं को प्रकट करने का माध्यम माना जाता है। यही कारण है कि काव्य प्रिय व्यक्ति को सुकुमार हृदय वाला भी कहा जाता है। भारत में सर्वप्रथमतः साहित्य लेखन संस्कृत भाषा में ही होती थी और इसे संपूर्ण भारत की भाषा माना जाता था। इस प्रकार हिंदी में विधा के रूप में सबसे पहले काव्य लेखन शुरू होता है। काव्य लेखन की यह शुरुआत संस्कृत साहित्य की रचनाओं के अनुवाद से हुई। संस्कृत साहित्य से अनुवाद परंपरा का विकास विशेष रूप से लक्षण ग्रंथों के अनुवाद से शुरू होती है। नाटक एवं अन्य विधाओं का विकास कविता के पश्चात होता है।

हिंदी कविता एवं अनुवाद

खड़ी बोली हिंदी में काव्य विधा की शुरुआत को लेकर हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास भाग आठ में लिखा है कि– "किसी काव्य ग्रंथ का अनुवाद करना अत्यंत कठिन कार्य है। तब भी आलोच्य काल में कई भारतीय और पाश्चात्य काव्य रचनाओं का ब्रजभाषा अथवा खड़ी बोली में अनुवाद किया गया। भारतीय काव्य रचनाओं के अनुवाद नवोत्थान की भावना के फलस्वरूप प्राचीन संस्कृति और साहित्य की ओर ध्यान जाने के कारण हुए थे। तत्कालीन कवियों ने संस्कृत ग्रंथों रामायण, महाभारत आदि का या तो अनुवाद किया या उसका भावाशय लेकर अपनी स्वतंत्र रचना प्रस्तुत की।" अनुवाद के अनुशासन के अंतर्गत यदि अनुवाद सिद्धांत की दृष्टि से देखा जाए तो काव्यानुवाद को लेकर यहां पर विद्वानों में कई वर्ग बने हुए हैं। इन अलग-अलग वर्ग के विद्वानों की परस्पर अलग मान्यताएं है। इनमें एक वर्ग के विद्वानों का मानना है कि काव्यानुवाद करना ही नहीं चाहिए। ऐसा करना मूल कृति के अपमान जैसा है। जबकि विद्वानों का दूसरा वर्ग यह मनाता है की काव्यानुवाद करना बहुत कठिन है। यह एक असंभव कार्य है अर्थात् काव्यानुवाद संभव ही नहीं है। तीसरे वर्ग के विद्वानों का मानना है कि काव्यानुवाद अनुवाद के दूसरे प्रकारों की अपेक्षा वास्तव में कठिन कार्य है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि काव्यानुवाद होना ही नहीं चाहिए। कुछ नहीं की स्थिति में थोड़ा सा ही होना बहुत होता है।

इसलिए काव्यानुवाद किया जाना चाहिए। बस कोशिश इतनी होनी चाहिए कि कम से कम मूल लेखक की भावनाओं की सही व्याख्या की जा सके। इस तरह से हिंदी काव्य विधा के विकास के दौर में काव्यानुवाद पूरे पाठ या पूरी कविता का न होकर मात्र मुख्य भाव अथवा संदेश की व्याख्या रूप में होता था। हालांकि हिंदी साहित्य के इतिहास में खड़ीबोली हिंदी में काव्यलेखन की सुचारू एवं संगत शुरूआत की अवधि द्विवेदी युग से मानी जाती है। लेकिन काव्य विधा के सूत्रपात का बीज भारतेंदु युग से शुरू हो जाता है। भले ही इस दौर की भाषा शुद्ध खड़ीबोली हिंदी नहीं थी। लेकिन काव्य लेखन का यही बीज द्विवेदी युग में जाकर फलित होता है और भाषा का संस्कार होने के बाद खड़ीबोली हिंदी का रूप ग्रहण करता है। इस रूप में हिंदी साहित्य में विधागत विकास के स्तर पर देखा जाए तो यह शुरुआत काव्य माध्यम से होती है, और अवधी व ब्रज मिश्रित हिंदी का प्रयोग इन अनुवादों में किया जाता है। इस प्रकार भाषा के स्तर पर काव्य में हिंदी के बहुत साफ सुथरे रूप का प्रयोग भले ही न मिले फिर भी हिंदी में सर्वप्रथम कविता की विधा रूप में शुरुआत होती है। जिस रूप में हिंदी के विकास के लक्षणों का निर्धारण आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के दरम्यान तमाम छोटे-छोटे एवं यत्र-तत्र बिखरे हुए उदाहरणों को समेटते हुए खड़ीबोली हिंदी का रूप निर्धारण भारतेंदु युग में आकर स्पष्ट होता है ठीक उसी रूप में भारतेन्दु युग एवं इससे पूर्व ही हिंदी में काव्य लेखन शुरू हो चुका था लेकिन सुचारु रूप में यह अपना स्थान द्विवेदी युग में आकर बना पाता है। इसके अतिरिक्त अनुवाद विधा के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करने का प्रचलन खूब रहा है। ढेर सारे लेखकों एवं कवियों ने मुख्य रचना के कथानक में थोड़ी हेर फेर करके उसे अपनी मौलिक रचना का श्रेय दिया है। यह काम काव्यानुवाद के साथ भी खूब हुआ है। रामायण, महाभारत और गीता आदि से कथानकों और श्लोकों आदि को उठाकर उनकी हिंदी में पुनर्व्याख्या करने के पश्चात उसे लेखक अथवा कवि ने अपनी मौलिक कृति करार देता था और इससे अनुवाद की

महत्ता अंधेरे में धकेल दी जाती थी। बावजूद इसके अनुवाद माध्यम से हिंदी में कविता की शुरुआत होती है।

खड़ी बोली हिंदी में काव्य विधा की शुरुआती दौर में संस्कृत से अनुवाद किए गए इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा की कृतियों के भी अनुवाद किए गए। सबसे ज्यादा अनुवाद तो संस्कृत से ही हुए। शुरुआत में जिन लेखकों ने अनुवाद किए उनकी सूची देते हुए हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास में लिखा गया है "इन अनुवादकों में संस्कृत की कृतियों का हिंदी में अनुवाद करने वालों में सर्वप्रथम शुरुआत राजा लक्ष्मण सिंह सन् 1826-1896 ने की थी। लक्ष्मण सिंह ने रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव आदि कृतियों का अनुवाद किया। इनके बाद तोताराम वर्मा (1847-1902) ने बाल्मीकि कृत *रामायण* का *राम रामायण* शीर्षक से, *बालकाण्ड, अयोध्या कांड* आदि का अनुवाद किया। इन्होंने जो भी अनुवाद किए वे बहुत ही बेहतरीन अनुवाद हैं। इनके पश्चात आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत से हिंदी में काव्यानुवाद किए। इन्होंने जयदेव कृत *बिहार वाटिका,* कालिदास कृत *ऋतुतरंगिणी* और पंडितराज जगन्नाथ कृत *गंगा लहरी* आदि के अनुवाद किए।

ठाकुर जगमोहन सिंह ने कालिदास की रचना ऋतुसंहार का अनुवाद किया। इन सभी लेखकों ने हिंदी मिश्रित अवधी और ब्रज में इन रचनाओं का अनुवाद किया। इनकी भाषा पर टिप्पणी करते हुए 'हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास' में लिखा है कि– "सभी ने ब्रज भाषा और परंपरागत संस्कृत छंदों का प्रयोग किया है। केवल राजा लक्ष्मण सिंह ने *रघुवंश* का अनुवाद खड़ी बोली गद्य में किया है। इसके अतिरिक्त हरिऔध ने सन् 1865 में कुसुमदेव की रचना *दृष्टान्तकालिका* का हिंदी में अनुवाद किया।" इस प्रकार हिंदी काव्य विधा के विकास में शुरू में जो भी अनुवाद हुए वे अवधी और ब्रज मिश्रित हिंदी में अधिकतर हुए। अनुवाद के समय तक हिंदी भाषा का वही रूप था जो अनुवादकों ने अपने साहित्य में प्रयोग किया है। इस समय तक हिंदी ने अपना समेकित रूप से आकार नहीं ग्रहण कर पाई थी बल्कि यह रूप ग्रहण की प्रक्रिया में थी। जिस तरह से विकास की दिशा में हिंदी बढ़ती रही उसी तरह उसका स्वरुप निर्धारण भी होता जा रहा था। इस विकास का हिंदी साहित्य में असर भी दिखता है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में पद्य विधा की शुरुआत संस्कृत कृतियों के अनुवाद से शुरू होती है। इसके अतिरिक्त अनुवाद के अलावा जो भी मौलिक रचनाएं की जाती थीं, वे सभी पौराणिक कथानकों, ऐतिहासिक कथानकों और मिथकों आदि के कथानक को आधार बनाकर की जाती थीं। संस्कृत के अलावा पाश्चात्य लेखकों की कृतियों का भी काव्यानुवाद खूब किया गया।

सन् 1757 की जीत के बाद भारत में अंग्रेजी शासन की आधार शिला रखी गई। चूंकि अंग्रेज विजेता थे और जिस रूप में चाहे अपने विजित राज्य या देश के लोगों पर अपना अधिकार जमा सकते थे। अंग्रेजों ने कुछ सीमा तक अपने स्वार्थ हेतु भारतीयों में भी अंग्रेजों को पैदा किया और कुछ भारतीय अंग्रेजी सरकार की आधुनिकता की चकाचौध में खुद अंग्रेजी सरकार के रहन-सहन, व्यवहार आदि का अनुकरण करने लगे ताकि वे भी आधुनिक दिख सकें। इस आधुनिकता के भारतीय साहित्य का समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभाव पड़ा। इस तथाकथित आधुनिकता के आलोक में पाश्चात्य साहित्य का खूब अध्ययन-अध्यापन किया हुआ और इनका अनुवाद भी अपने देशी लोगों के लिए किया गया। काव्यानुवाद में पाश्चात्य लेखकों जैसे– *जॉन मिल्टन, जोनसन, ग्रे, गोल्डस्मिथ, टॉमसन, कूपर, विलियम वर्डस्वर्थ* आदि कवियों की कृतियों के बहुत ही बेहतरीन अनुवाद हिंदी में किए गए। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हिंदी साहित्य में *'शोक गीत'* लिखने की परंपरा शुरू हुई। यह शुरुआत ग्रे की कविता *'एलेजी रिटेन इन ए कंट्री चर्चायार्ड'* से मानी जाती है। हिंदी काव्यविधा में शोकगीत की परंपरा इसी कविता के माध्यम से प्रस्फुटित हुई। इस कविता से पूर्व हिंदी साहित्य में शोकगीत लिखने का प्रचलन नहीं था। इस प्रकार यदि गौर किया जाए तो यह परंपरा भी अनुवाद के माध्यम से हिंदी में विकसित होती है। इसका संदर्भ देते हुए हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास में लिखा है कि "हिंदी साहित्य में पहला शोकगीत ग्रे की एलेजी की प्रणाली पर हिंदी में भी शोकपूर्ण कविताएँ लिखी जाने लगीं।" इस रूप में हिंदी में शोक गीत लेखन की शुरुआत इसी कविता का अनुवाद से होती है।

हिंदी साहित्य में अंग्रेजी से कविताओं का बड़ी मात्रा में अनुवाद हुआ। अंग्रेजी से अनुवाद करने वालो में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि कवियों की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन्होंने इनका अनुवाद करके हिंदी समाज व साहित्य को एक नई विधा व नए साहित्य से परिचय कराया। इन कवियों ने गोल्डस्मिथ व टामसन की रचनाओं का अनुवाद किया। हिंदी भाषा में अंग्रेजी की अनूदित कविताओं का हवाला देते हुए हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास में लिखा है कि "सन् 1876 में जिला मुजफ्फरनगर के बाबू लक्ष्मीप्रसाद ने गोल्डस्मिथ की रचना हरमिट का योगी' नाम से अनुवाद कर चुके थे और जिसे बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने अपने खड़ीबोली का पद्य (1886 ई) में लंदन संस्करण नामक संग्रह में सहर्ष सम्मिलित किया। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के *हरमिट* का *एकांतवासी योगी* 1886 ई और *'देसेर्टेद विलेज'* का

'उजड़ ग्राम' (1889 ई) के नाम से क्रमशः 'खडी बोली' और 'ब्रज भाषा' में अनुवाद किया। आगे चलकर उन्होंने *ट्रैवलर* का *'श्रांत पथिक'* (1902) शीर्षक के नाम से अनुवाद किया।" इस रूप में खड़ी बोली हिंदी का काव्य साहित्य संस्कृत व अंग्रेजी साहित्य की कविताओं के अनुवाद के माध्यम से विकास करने लगा था। इन अनुवादों के अतिरिक्त अंग्रेजी के और दूसरे कवियों की कविताओं का अनुवाद हुए। जिनमें श्रीधर पाठक ने ग्रे की कविता *'शेफर्ड एंड द फिलोसफर'* का *'गड़रिया और आलिम'* शीर्षक से लोंगफेलो की कविता *'इवेंजलाइन'* का *'अन्जलाइना'* शीर्षक से और पारनेल की *हरमिट* का *योगी* शीर्षक से अनुवाद किया। इसके अलावा इन्होंने किसी अंग्रेजी शिलालेख का भी अनुवाद किया था। श्रीधर पाठक के बाद जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने पोप की रचना *An essay on Criticism* का *'समालोचनादर्श'* के नाम से ब्रज भाषा में अनुवाद किया जो सन् 1897 में नागरी प्रचारिणी पत्रिका से प्रकाशित हुआ था।

हिंदी साहित्य में काव्यविधा के इतिहास को यदि देखा जाए तो भारतेंदु पूर्व ही इसकी शुरूआत हो चुकी थी। हालांकि यह तथ्य भी उचित है कि खड़ी बोली हिंदी में काव्य लेखन की विशुद्ध शुरूआत द्विवेदी युग से ही होती है। इसके बावजूद भी अनुवाद की दृष्टि से भारतेंदु पूर्व के समय एवं भारतेंदु युग के दौरान हिंदी काव्य विधा में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस दौरान हिंदी में काव्य विधा का सूत्रपात एवं काव्य की अलग-अलग शैलियों का भी सूत्रपात हुआ। इस रूप में हिंदी साहित्य के अंतर्गत हिंदी की विभिन्न विधाओं के विकास में अनुवाद की भूमिका को स्वीकार किया जा सकता है और अनुवाद को एक दोयम दर्जे का काम न मानते हुए एक सृजनात्मक एवं सम्मानजनक कार्य माना जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

- अरुण प्रकाश, *गद्य की पहचान,* अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, (उत्तर प्रदेश) पहला संस्करण-2012
- कृष्ण कुमार गोस्वामी, *अनुवाद विज्ञान की भूमिका,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2008
- नगेंद्र (सं.), *हिंदी साहित्य का इतिहास (पंचदश भाग),* नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण-प्रथम
- नगेंद्र (सं.), *हिंदी साहित्य का इतिहास,* मयूर पेपर बैक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1973
- बच्चन सिंह, *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2011
- बच्चन सिंह, *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ती-2005
- मोहन अवस्थी, *हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास,* सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1990
- मोहन अवस्थी, *हिंदी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008
- रमण प्रसाद सिन्हा, *अनुवाद और रचना का उत्तरजीवन,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2002
- रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण-संवत 1986
- रामस्वरुप चतुर्वेदी, *हिंदी काव्य का इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2007
- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2006
- विजयेन्द्र स्नातक, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996
- हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्यः उद्‌भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवीं आवृत्ती-2009

***

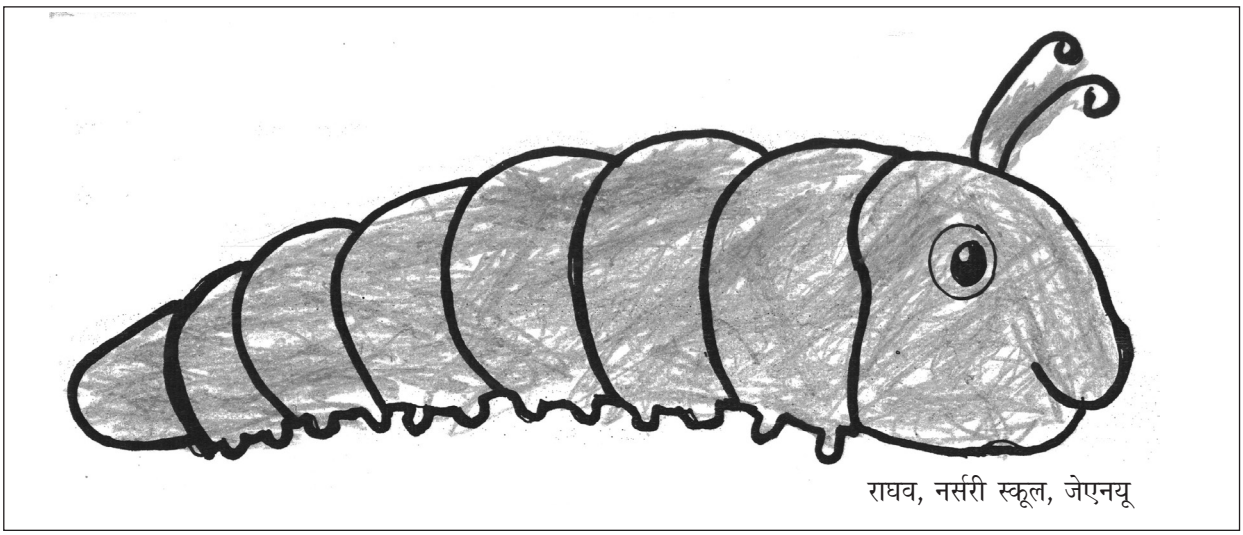

राघव, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

अनुवाद का एक परिचयात्मक अध्ययन

धर्मराज कुमार

मानव-सभ्यता के विकास में अनेक साधनों और संसाधनों का योगदान रहा है। इसी विकास क्रम में मानव ने ज्ञान परंपरा का भी निर्माण किया है। ज्ञान परंपरा के निर्माण में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। चूंकि, दुनिया में कई भाषाएँ हैं, अतः दुनिया के मनुष्यों को जोड़ना एक दुरूह और असंभव-सा कार्य है। ऐसी स्थिति में, अनुवाद मानव-ज्ञान के विकास क्रम मूल-स्रोत साबित हुई है। जिस प्रकार भाषा-ज्ञान मनुष्य को पशुओं की तुलना में श्रेष्ठ बनाता है, उसी प्रकार अनुवाद का ज्ञान किसी भी भाषा-समाज को समृद्ध करता है। अनुवाद-ज्ञान के इतने पर्याय हैं कि ज्ञान के विकास का कोई भी हिस्सा अनुवाद से अलग नहीं दिखता।

दुनिया के अन्य विकसित देशों की शिक्षा-पद्धति में अनुवाद अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में पहले से स्वीकृत और स्थापित है, जबकि भारतीय शैक्षणिक परिवेश में अनुवाद आज भी गंभीर विमर्श की श्रेणी में शामिल करना एक चुनौती है। भारत में अनुवाद कार्य और अनुवादक दोनों की सम्मानजनक स्थिति के लिए आज भी प्रयास करना पड़ रहा है। ऐसे समय में देवशंकर नवीन की ताजा प्रकाशित पुस्तक *'अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य'* एक सुखद सूचना है। यह कृति सन् 2016 में प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से प्रकाशित है जो अनुवाद अध्ययन पर केन्द्रित है। इस पुस्तक के माध्यम से बड़ी सहजता से भारतीय अनुवाद-कार्य की ओर आम पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का सार्थक और सफल प्रयास दीखता है।

भारत में अनुवाद पर चर्चा कभी-कभार ही हो पाता है। फलस्वरूप, कुछ पत्रिकाओं में क्रमवार अनूदित कृतियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। इसी के जरिये कुछ अनूदित पुस्तकों पर भी बात होती है। फिर भी, भारतीय अनुवादकों पर उतनी गंभीरता से विमर्श नहीं हो पाता, जितना अपेक्षित है। दूसरे अर्थों में, भारतीय शिक्षा-प्रणाली में अनुवाद पर समग्र रूप से विमर्श कभी हुआ ही नहीं।

ऐसे समय में, यह पुस्तक अनुवाद विमर्श की समग्रता को रेखांकित करती दिखती है। जाहिर है कि इस एक पुस्तक से सम्पूर्ण अनुवाद-विमर्श पर बातचीत की उम्मीद नहीं की जा सकती; पर संक्षेप में यह उस सम्पूर्णता की ओर जाने का मार्ग अवश्य प्रशस्त करती है। दो सौ आठ पृष्ठों की यह पुस्तक अनुवाद के समस्त पहलुओं को पाठक के सामने लाती है। हिंदी में अब तक अनुवाद सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें उपलब्ध हैं, वे अतीत काल में हुए अनुवादों और अनुवादकों के परिचय से आगे नहीं बढ़ पाई हैं। अनूदित कार्य के अलावा अनुवाद के विभिन्न पहलुओं की मौलिक जानकारी हेतु कई पुस्तकों का सहारा लेने के बावजूद विश्वासपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि अनुवाद के सभी पहलुओं पर सामग्री मिल ही जाए। पश्चिम में, अनुवाद के क्षेत्र की चिन्तनधारा सैद्धान्तिक-व्यावहारिक दोनों दिशाओं में बहुत तेजी से बढ़ी है। इसके साथ ही, अनुवाद के अर्थ का भी विस्तार तेजी से हुआ है। ऐसी परिस्थिति में, भारतीय अनुवाद धारणा एवं अनुवाद परम्परा को समझने, अनुवाद अध्ययन महत्ता स्थापित करने में यह पुस्तक अभूतपूर्व योगदान देगी।

सोलह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक को मूलतः चार खण्डों में विभाजित कर आसानी से समझा जा सकता है। पहले खण्ड में समकालीन अनुवाद चिन्तन से लेकर प्राचीन भारतीय अनुवाद परम्परा तक का विस्तृत विवरण है। दूसरे खण्ड में, औपनिवेशिक काल में पनपी राजनीतिक सत्ता की स्थापना हेतु अनुवाद की राजनीति और सत्ता विमर्श पर गम्भीरता से प्रकाश डाला गया है। तीसरे खण्ड में, अनुवाद के रोजगारोन्मुखी पहलुओं, प्रशिक्षण और उसकी व्यावसायिक उपयोगिता इत्यादि पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया गया है। चौथे खण्ड में, वैश्विक साहित्य के निर्माण में अनुवाद की महत्ता या भूमिका को दर्शाया गया है।

इस पुस्तक की शुरुआत समकालीन साहित्य चिन्तन में अनुवाद अध्ययन की प्रासंगिकता से होती है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही अनुवाद अध्ययन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए देवशंकर नवीन लिखते हैं कि "मानव सभ्यता के इतिहास में अनुवाद की उपस्थिति प्रारम्भ काल से ही है। भाषाई भिन्नता के बाधक तत्त्वों की उपस्थिति के बावजूद मनुष्य अपनी धारणाओं की अभिव्यक्ति निरन्तर करती जा रही है, तो इसका श्रेय अनुवाद को ही जाता है।" लेखक की उक्त घोषणा से असहमति की कोई गुंजाईश नहीं दिखती; क्योंकि जीवन-जगत में अभिव्यक्ति के हर प्रयास में हमें सम्प्रेषण हेतु अनुवाद तत्पर दिखता है।

आलोच्य पुस्तक के हर अध्याय में अनुवाद चिन्तन के बहुमुखी विमर्श बहुत ही सरल भाषा में प्रस्तुत हुआ है। इसमें अनुवाद पद्धति और प्रक्रिया पर तो चर्चा है ही, साथ ही अनुवाद-परिचय, स्रोत-भाषा, लक्ष्य-भाषा आदि से लेकर अनुवाद

के विभिन्न प्रकारों तक को सोदाहरण समझाया गया है। भारतीय अनुवाद परम्परा और उसके चिंतन पर केंद्रित अध्याय न केवल अनुवाद, बल्कि भारतीय साहित्य चिंतन परम्परा से पाठकों को गंभीरतापूर्वक परिचय कराने का प्रयास किया गया है। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय चिंतन और अनुवाद परम्परा को समझने में एशियाई अनुवाद परम्परा की बड़ी भूमिका है। इतना ही नहीं, इस पुस्तक में हिंदी भाषा के उद्‌भव से लेकर हिंदी अनुवाद की परम्परा और उसके प्रभाव तक का संक्षिप्त और सारगर्भित मूल्यांकन किया गया है।

इस पुस्तक का सबसे छोटा अध्याय 'अनुवाद और सत्ता विमर्श' है। इस अध्याय का मूल भाव औपनिवेशिक काल में भारतीय प्राचीन साहित्य का अनुवाद और उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालना है। इस अध्याय में अंग्रेज़ों द्वारा अनुवाद किये गए महत्त्वपूर्ण ग्रंथों और उसके उद्देश्य का विश्लेष्णात्मक अध्ययन है। हालाँकि, अनुवाद और सत्ता विमर्श के विस्तृत पहलुओं पर बात नहीं की गई है। वर्तमान संदर्भ में, यह आवश्यक है कि अनुवाद और सत्ता विमर्श पर केंद्रित अन्य पहलुओं पर भी गंभीर बात हो, जो नहीं हो पाई है।

अनुवाद के क्षेत्र में प्रतिलिप्यधिकार-सम्मान जैसे विषय पर चिन्ता करना अब तक हिंदी में मुनासिब नहीं समझा जा रहा था। इस प्रसंग में देवशंकर नवीन ने सम्भवतः पहली बार तकनीकी बातों को रेखांकित कर अनुवाद अध्ययन का क्षेत्र-विस्तार किया है और समकालीन अनुवाद-चिन्तकों के लिए हिंदी में एक नई दिशा को आलोकित किया है। अनुवाद-व्याख्या के इस अनछुए पहलू के गहन विश्लेषण से हमारे सामने शोध की नई दृष्टि उपस्थित होती है। 'अनुवाद और प्रतिलिप्यधिकार सम्मान' शीर्षक अध्याय में प्रतिलिप्यधिकार को अनुवाद से जोड़कर देखना अनुवाद के गहन विस्तार को रेखांकित करता है। साहित्य के परिप्रेक्ष्य में प्रतिलिप्यंकन पर लगातार चर्चा होती रही है। इसका मूल स्वर आरोप-प्रत्यारोप का रहा है। आरोप-प्रत्यारोप से अभिप्राय है कि कई बार कोई रचना पढ़ते हुए हमें ऐसा लगता है जैसे किसी एक भाषा की प्रसिद्ध साहित्यिक कृति की पुनर्रचना किसी दूसरी भाषा के रचनाकार द्वारा दूसरी भाषा में कर दी गई हो। इसे गैर-अकादेमिक भाषा में चोरी भी कहा जा सकता है। विश्व-स्तर पर इसे प्रतिलिप्यधिकार उल्लंघन या कॉपीराइट उल्लंघन भी कहा जाता है। यह अध्याय अनुवाद के विस्तृत फलक पर ऊँगली रखता है। यहाँ संक्षेप में, अनुवाद को व्यावसायिक नैतिकता की कसौटी पर भी कसा गया है।

'अनुवाद प्रशिक्षण और संस्थान' तथा 'अनुवाद कौशल की व्यावसायिक उपादेयता' जैसे अध्यायों से यह साफ जाहिर होता है कि भारत में अनुवाद की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। यह अध्याय अनुवाद के प्रति जनमानस में व्याप्त चेतना के अभाव को दर्शाता है। लेखक अनुवाद के प्रति उदासीन रवैये के सन्दर्भ में अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि 'जिनकी धरोहरों के अनुवाद से परराष्ट्र लाभान्वित हुए, उस भव्य विरासत के वंशजों के लिए अपनी कंगाली पर आत्मदया की स्थिति कई बार इस तरह भी आती है।' यहाँ तक कि अनुवाद अध्ययन के इच्छुक अध्येताओं की सुविधा हेतु इस अध्याय में उन्होंने अनुवाद प्रशिक्षण संस्थानों की सूची भी दी है। प्रश्नाकुल प्रशिक्षु चाहें तो उसका लाभ लें।

अगले अध्याय में उन्होंने इस बात का उल्लेख प्रमुखता से किया है कि कैसे अनुवाद ने पूरे विश्व की मानवता को एक सूत्र में पिरो दिया। आज दुनिया के सभी देशों के साहित्य अन्य देशों में अनुरागपूर्वक पढ़े और सराहे जा रहे हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय अनुराग का सारा श्रेय सिर्फ और सिर्फ अनुवाद को ही जाता है।

पाश्चात्य अनुवाद चिन्तन का उन्होंने यद्यपि बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया है। जबकि अनुवाद सम्बन्धी समस्त पुस्तकों का ज्यादा झुकाव पाश्चात्य अनुवाद चिन्तन पर ही होता है। किन्तु आलोच्य पुस्तक में 'पाश्चात्य अनुवाद चिन्तन' अध्याय की संक्षिप्तता का उद्देश्य सम्भवतः पाश्चात्य अनुवाद चिन्तन के परिचयात्मकता तक ही सीमित रहना हो।

'अनुवादकीय पदबन्ध' में अनुवाद अध्ययन की पुनर्व्याख्या की गई है। इस अध्याय में सम्पूर्ण पुस्तक में दिए गए विमर्शों का निचोड़ प्रस्तुत है। यह अध्याय निष्कर्ष की तरह लिखा गया है, जिसमें सम्पूर्ण पुस्तक का सार निहित है।

अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में एक ऐसी पुस्तक की कमी काफी खल रही थी, जो अनुवाद जैसे विषय को पाठकों के बीच परिचयात्मक रूप में पहुँचा सके। इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात यह कमी दूर होती दिखाई देती है। अनुवाद अध्ययन के अनिवार्य ज्ञान हेतु इस पुस्तक को हिंदी भाषा में लिखित सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। हालाँकि, भाषा के स्तर पर तत्सम शब्दों की बहुलता के कारण कहीं-कहीं इस पुस्तक की भाषा बोझिल-सी लगती है, जिसका प्रभाव पठनीयता के प्रवाह पर पड़ता है। पर तथ्यतः शब्दावली एवं भाषा-प्रयोग कई बार विषय की माँग से भी निर्देशित होता है। सम्भवतः इसी कारण कुछेक पृष्ठों में प्राचीन पद-युग्मों का सहारा लिया गया है। पूरी किताब में, कुछ उदाहरणों, वाक्यों और प्रसंगों की पुनरावृति भी हुई है, जिससे बचा जा सकता था। अगले संस्करण में इसमें सुधार की अपेक्षा जा सकती है।

आनेवाले दिनों में, शिक्षा जगत में और विशेषकर साहित्य और अनुवाद अध्ययन को बढ़ावा देने हेतु इस पुस्तक की भूमिका अविस्मरणीय होगी। अनुवाद की इस पुस्तक को अपरिहार्य रूप से अन्य विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।

***

बढ़ती उम्र के साथ जीवन प्रबंध का महत्व

प्रो. दीपक शर्मा

बढ़ती उम्र मुट्ठी में से सरकती रेत की तरह होती है। कब अपनी यात्रा पूरी कर इंसान को बुढ़ापे की चादर में लपेट लेती है, इस बात का अहसास मनुष्य को तब तक नहीं होता जब तक उसका शरीर किसी भी प्रकार के कार्य को करने में असमर्थ महसूस नहीं करता। परन्तु इस तथ्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि इस जीवन का दूसरा छोर मृत्यु ही है। जैसा कि हम जानते है हर जीव को जीवन के तीन कालों से गुजरना पड़ता है बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा। बढ़ती उम्र का परिणाम है बुढ़ापा। जो एक समय के साथ साथ कई रूपों में प्रखर होने लगता है, जैसे त्वचा का ढीला होना, हड्डियों और त्वचा के बीच मांसपेशियों का सिकुड़ जाना, मेरुदण्ड का इंद्रधनुषी आकार ले लेना शारीरिक बुढ़ापे को दर्शाता है जबकि दृष्टि का कमजोर होना, सुनने और सोचने की शक्ति एवं यादाश्त का कमजोर हो जाना मानसिक बुढ़ापे की पहचान मानी जाती है। वैसे तो शारीरिक एवं मानसिक बुढ़ापा दोनों ही एक दूसरे के पूरक है चूंकि मस्तिष्क द्वारा किया गया रासायनिक एवं विद्युतीय प्रसारण समस्त शारीरिक क्रियाओं को विनियमित करता है इस लिये बढ़ती उम्र का मस्तिष्क पर होने वाले प्रभाओं और उनकी जटिलता को समझना तथा वृद्धावस्था में इनसे जूझने की बजाय सामंजस्य बनाते हुए सुन्दर एवं सुशोभित जीवन निर्वाह करना भी एक कला से कम नहीं आंका जा सकता। इस कला में मस्तिष्क, मन, अध्ययन एवं यादाश्त का सबसे बड़ा योगदान होता है। मस्तिष्क हमारे शरीर का वह अंग है जो शरीर की पाँचों इन्द्रियों यानी आँख, नाक, कान, मुँह एवं त्वचा पर मौजूद संवेदनशील ग्राही (रिसेप्टर्स) के माध्यम से किसी भी प्रकार की बाहरी अर्थात वातावरणीय उत्तेजना को समझता एवं ग्रहण कर सूचना संसाधन के द्वारा शारीरिक में चेतना को जन्म देता है। जिसके कारण हम देख, सुन, बोल ही नहीं सकते अपितु प्रतीकात्मक भी हो जाते हैं।

मस्तिष्क एवं वातावरण के बीच होने वाले सामंजस्य को मन कहते है। वातावरण में जैविक, अजैविक एवं सभी प्रकार के सामाजिक और असामाजिक तत्व शामिल होते हैं। हम जैसी संगत में विचरण करते हैं हमारे विचार भी वैसा ही रूप ले लेते हैं। इंसान प्रायः किसी कार्य को करने का मन बनाता है, मस्तिष्क नहीं बनाता। उदहारण के लिए हम फुटबाल खेलने, घूमने या सिनेमा देखने का मन बनाते है तो मन हमारे वातावरण के अनुरूप कार्य करता है अगर आपके अधिकतर संगी साथी फुटबॉल खेलने वाले या उसमे रूचि रखने वाले हैं तो आपका मन भी फुटबॉल खेलने का बन जाता है और अगर ताश या किसी भी प्रकार का कोई दूसरा खेल अथवा पुस्तकें पढ़ने में रूचि रखने वाले है तो आप उसके अनुरूप मन बना लेते हैं। मस्तिष्क एवं मन दोनों मिलकर विचारों की उत्पत्ति करते हैं। विचार सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जिनका सीधा प्रभाव हमारे चालचलन एवं व्यवहार द्वारा प्रदर्शित होता है। सही समय पर लिया गया एक सकारात्मक विचार हमारे जीवन को उन्नत एवं प्रगतिशील बना सकता है और एक नकारात्मक विचार जीवन को क्षत-विक्षत कर सकता है।

अध्ययन मस्तिष्क का पोषण है जो मस्तिष्क को केवल स्वस्थ ही नहीं रखता बल्कि चुस्त-दुरुस्त भी बनाता है। जिस प्रकार दूषित भोजन शरीर को अस्वस्थ कर देता है उसी प्रकार अस्वस्थ अध्ययन मस्तिष्क को कुपोषित कर कमजोर बना देता है। स्वस्थ अध्ययन के लिए एकाग्रता, तीव्रता एवं आध्यात्मिक माहौल का होना आवश्यक होता है। क्योंकि इन्ही के द्वारा मस्तिष्क किसी भी अध्याय को पूर्णरूप से पंजीकृत करने में सक्षम होता है। अध्ययन को अर्जित करना मस्तिष्क की दूसरी बड़ी विशेषता होती है। अर्जन के लिए सबसे आवश्यक है अभ्यास। यह मस्तिष्क द्वारा किये गए अर्जन को सुयोजित कर यथास्थान बनाने में मददगार साबित होता है। इसलिए अध्ययन और अभ्यास का गहरा रिश्ता होता है। अभ्यास द्वारा किये गए अर्जन को फिर से वापस बुलाना या फिर प्रतिलिपित करने की क्षमता को यादाश्त कहते हैं। मस्तिष्क की अर्जन को प्रतिलिपित करने की तीव्रता से ही मस्तिष्क के स्वस्थ होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

मस्तिष्क में उम्र बढ़ने की प्रक्रिया अन्य शरीर के अंगों से भिन्न होती है। यह न केवल हमारे विभिन्न शरीर प्रणालियों को प्रभावित करता है बल्कि समाज में हमारे सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित करता है। इसलिए, यह जानना निश्चित रूप से आवश्यक है कि हमारा दिमाग कैसे काम करता है? बुढ़ापे की प्रक्रिया के साथ मस्तिष्क में किस प्रकार के बदलाव आते

हैं? और पोषण या औषधीय हस्तक्षेप के माध्यम से प्रतिवर्ती उम्र बढ़ने के बदलाव की सम्भावनाएँ।

वृद्धावस्था में होने वाले मानसिक, सामजिक एवं व्यवहारिक दुष्परिणामों को मद्देनजर रखते हुए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एक प्रोगशाला में अलग-अलग उम्र के सफ़ेद चूहों पर कुछ प्रयोग यह जानने के लिए किये गए कि क्या बढ़ती उम्र के साथ मस्तिष्क की संरचना, कोशिकाओं के विद्युतीय एवं रासायनिक प्रवाहकत्त्व भी प्रभावित होते हैं या नहीं। परिणामों से जिज्ञासा की केवल पुष्टि ही नहीं हुई अपितु इस बात का भी पता चला की विद्युतीय एवं रासायनिक प्रवाहकत्त्व का जीव के व्यवहार के साथ बहुत गहरा संबंध होता है। चूंकि शरीर के अन्य अंगो की तुलना में मस्तिष्क, ऑक्सीकरण की क्रिया के लिए अधिक संवेदनशील होता है। बढ़ती उम्र के साथ एक प्रकार का ऑक्सीडेटिवे तनाव स्थापित हो जाता है जो कोशिकाओं के एक्सोन की झिल्ली के आर-पार होने वाले रासायनिक एवं आयनिक विनिमय और उससे पैदा होने वाले विद्युतीय प्रभार में काफी हद तक परिवर्तन लाता है जिसके कारण दिमागी कोशिकाओं में समन्वय की कमी हो जाती है और बढ़ती उम्र के साथ मस्तिष्क की वातावरणीय उत्तेजनाओं के प्रति सजगता एवं संवेदनशीलता शनै-शनै घटने लगती है जिसके कारण अध्ययन एवं यादाश्त पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से सामने आया है कि उम्र के साथ बढ़ते ऑक्सीडेटिवे तनाव के कारण 80 वर्ष की उम्र तक मनुष्य के मस्तिष्क की 40 प्रतिशत कोशिकाएं संवेदनहीन हो आपसी समन्वय को खो देती हैं जिससे मस्तिष्क किसी भी प्रकार के मानसिक रोग जैसे अल्ज़हीमेर, पार्किसन एवं एपिलेप्सी अथवा मिर्गी के लिए अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है ऐसी स्थति में बढ़ती उम्र के साथ सबसे बड़ी चुनौती हो जाती है कि कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिवे तनाव से कैसे रोका जाय।

इस दिशा में अभी तक किये गए अनुसंधानों एवं प्रयोगों से पता लग पाया है कि ऑक्सीडेटिव तनाव को जीवन शैली में परिवर्तन लाकर भी कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बढ़ती उम्र के साथ हमे अपने खान-पान एवं व्यवहार को शारीरिक मांग एवं क्षमता के अनुरूप ढालने की कोशिश करनी चाहिए जिससे कि शरीर या उसके किसी भी एक अंग पर उसकी जरूरत या सहन क्षमता से अधिक बोझ ना पड सके। इस प्रकार की जीवन शैली को अगर जीवन प्रबंध की संज्ञा दी जाए तो गलत नहीं होगा। दरअसल 35-40 वर्ष की उम्र के बाद जीवन प्रबंध एकमात्र उपाय रहता है। वृद्ध जीवन को सुखमई और जीवंत बनाने का। चूंकि जीवन प्रबंध में मस्तिष्क का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहता है इसलिए बढ़ती उम्र शरीर के साथ मस्तिष्क को स्वस्थ रखना भी अतिआवश्यक है।

कोशिकाओं में ऑक्सीडेंट्स एवं एंटीऑक्सीडेंट्स दोनो ही संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। चूंकि मस्तिष्क दूसरे अंगों की तुलना में अधिक ऑक्सीजन का इस्तेमाल करता है जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क में पाये जाने वाले फोस्फोलिपिड्स का ऑक्सीकरण भी अधिक होता है। यही कारण है मस्तिष्क में एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा दूसरे अंगों से कम रहती है। ऐसा होने से मस्तिष्क, मानसिक रोगो के लिए अधिक सवेदनशील होता है ऐसा माना जाता है कि बढ़ती उम्र के साथ यह संतुलन भी बिगड़ने लगता है ऐसी स्थिति में अगर बाह्य एंटीऑक्सीडेंट्स का इस्तमाल अधिक किया जाए तो इस संतुलन को किसी हद तक कायम रखा जा सकता है। प्राणी की उत्पति में वनस्पतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है इसलिए अधिकतर वनस्पति में पाये जाने वाले तत्व प्राणी की संरचना एवं कार्यशैली में लिप्त पाये जाते हैं। प्रयोगों से यह साबित हो चुका है कि बढ़ती उम्र में अगर एंटीऑक्सीडेंट युक्त आहार की मात्रा बढ़ा दी जाए तो ऑक्सीकरण से होने वाले दोषों को काम किया जा सकता है। जीवन प्रबंध के नजरिये से अगर बढ़ती उम्र के साथ-साथ एंटीऑक्सीडेंट युक्त आहार की मात्रा को भी समय-समय पर बढ़ाते रहे तो ऑक्सीकरण की क्रिया एवं गति पर काबू पाया जा सकता है जिससे मस्तिष्क में होने वाले दोषों की उत्पति को काफी हद तक टाला भी जा सकता है। हमारे दैनिक जीवन में इस्तेमाल होने वाले आहार जैसे फल, सब्जियों, अनाज एवं मसालों में प्रोटीन, वसा एवं पॉलीफिनॉल नामक एंटीऑक्सीडेंट्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। हल्दी, ब्राह्मी, आंवला, पीपली, काली मिर्च, तेजपत्ता, दालचीनी इत्यादि का इस्तेमाल भारतीय चिकित्सा शैली 'आयुर्वेद' में नाना प्रकार की बीमारियों की चिकित्सा के लिए सदियों से होता रहां है। ब्राह्मी की खूबियों को मध्य नजर रखते हुए इसे "नर्व टॉनिक" की संज्ञा से नवाजा जाता रहा है पिछले दो दशकों से हल्दी ने वैज्ञानिकों को अधिक आकर्षित किया है। इसमें पाये जाने वाला पीला रंग का तत्व "कुर्कुमिन" शोध का केंद्र बना हुआ है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एक प्रयोगशाला में अलग अलग उम्र के सफ़ेद चूहों पर किये गए अनुसंधानों से पता चला है कि अगर चूहों को उनके भोजन में हल्दी एवं ब्राह्मी की एक मानक मात्रा कुछ महीनो तक खिलाई जाए तो मस्तिष्क में होने वाले ऑक्सीडेटिवे तनाव को काफी हद तक काम किया जा सकता है। हल्दी में पाया जाने वाला 'करक्यूमिन' नाम का तत्व एवं ब्राह्मी में पाया जाने वाला 'बकोपिन' नाम का तत्व दोनों ही एंटी ऑक्सीडेटिवे गुणवत्ता से सराबोर पाये गए।

चूंकि विभिन्न प्रकार के हार्मोंस की शारीरिक क्रियाओं में

अधिकतम भगीदारी रहती है। इसलिए हार्मोंस की बढ़ती उम्र पर गहरा प्रभाव देखा गया है। हार्मोंस चिकित्सा द्वारा बढ़ती उम्र में होने वाले मानसिक विकारों को कम करने की दिशा में भी पिछले कुछ दशकों से वैज्ञानिकों की काफी रूचि रही है।

'एस्ट्रोजन' एवं 'प्रोजेस्टेरोन' नामक हॉर्मोन्स का बढ़ती उम्र में होने वाले 'शारीरिक' एवं मानसिक विकारों पर काफी प्रभावशाली असर देखा गया है बढ़ती उम्र के साथ इन हॉर्मोन्स की उत्पत्ति एवं रिहाई में आने वाली कमी शनै-शनै शरीर एवं मस्तिष्क पर दुषप्रभाव डाल उसे वृद्धावस्था की तरफ धकेलता है। डिहाइड्रोएपिएंड्रोस्टेरॉन– एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन नामक हॉर्मोन्स का अग्रगामी होने के कारण है। इसका प्रयोग सफ़ेद वृद्ध चूहों के व्यवहार पर काफी हद तक कारगर साबित हुआ है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एक प्रयोगशाला में किये गए प्रयोगों से इस बात की पुष्टि हो पायी है कि बहिर्जात डिहाइड्रोएपिएंड्रोस्टेरॉन वृद्ध चूहों में एंटीऑक्सिडेटिव क्षमता को ही नहीं बढ़ाता अपितु वृद्ध चूहों के व्यवहार में भी सकारात्मक बदलाव पाया गया है!

अतः बढ़ती उम्र में दैनिक खान-पान की शैली के निरंत्तर बदलाव के साथ-साथ अगर मस्तिष्क की कार्य-शैली को भी शनै-शनै बदला जा सके तो वृद्ध अवस्था में होने वाले मानसिक विकारों से बचा ही नहीं जा सकता अपितु इनके प्रति उत्पन्न होने वाली संवेदनशीलता को भी कम किया जा सकता है।

***

पहल नैथानी, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

'विद्रोही' : जेएनयू की वाचिक परंपरा का कवि

सुमित चौधरी

कैसे कहूँ कि मैं विद्रोही जी को पूर्ण रूप से जानता हूँ? लेकिन हाँ, 2014 से लेकर उनके मरने की वेला तक तो जानता ही हूँ। अब क्या कहूँ? उनको जितना जानता हूँ, वह कम तो नहीं, जिसको चंद पन्नों में समेट कर रख दिया जाए। वह इसलिए कि विद्रोही जी वाचिक परंपरा के कवि थे। उनकी कविताई इतिहास का आख्यान रचती थी और इतिहास में जो कुछ भी दबा पड़ा था उसे खुदाई/कविताई के माध्यम से देखने/सुनने का सलीका पेश करती थी। बहरहाल, विद्रोही जी को मैंने सबसे पहले कब देखा ठीक-ठीक बता पाना मुश्किल है? 2014 में मेरा दाख़िला 'एम.ए. हिंदी साहित्य' जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हुआ। अगस्त या सितम्बर महीने में फ्रेशर पार्टी थी। उसी प्रोग्राम में विद्रोही जी को कविता पाठ करते हुए देखा-सुना। उनको देखकर ऐसा लगा जैसे कोई अपना आदिम-पूर्वज खड़ा होकर इतिहास की यात्रा करवा रहा हो, अपनी कविताओं के माध्यम से। उसके बावजूद भी नहीं जान सका कि यह कौन व्यक्ति है जो कविता पाठ कर रहा है? जिसकी कविता और कविता पाठ करने के अंदाज को देखकर शरीर के रोंगटे खड़े हो गए थे। खैर, विद्रोही जी के बारे में जानने के लिए मैंने उसी समय कुछ सीनियर्स से पूछना शुरू कर दिया कि यह महाशय कौन हैं? तब पता चला कि यह अपने ही सेंटर के पूर्व शोधार्थी थे, जो अब कवि और आंदोलनकर्ता हो चले हैं। यह सुनकर अपनी दिलचस्पी और बढ़ गई। फ्रेशर पार्टी में दोस्त अभिषेक सौरभ और मैं साथ बैठे थे। अभिषेक भी उनकी कविताओं को सुनकर और उनकी भंगिमा देखकर उनका प्रशंशक बन बैठा, कहने लगा कि यह (विद्रोही) अपने ग्रुप का आदमी लगता है पार्टनर। मैंने कहा 'हाँ पार्टनर'। हम दोनों विद्रोही जी के संदर्भ में बात कर ही रहे थे तब तक विद्रोही जी अपनी किसी कविता का पाठ पूरे जोश के साथ करते हुए कह रहे थे कि—

'इतिहास में वह पहली औरत कौन थी
जिसे सबसे पहले जलाया गया
मैं नहीं जानता
लेकिन जो भी रही होगी
मेरी माँ रही होगी'

इतना सुनते ही पूरा आडोटोरीयम शांत हो गया। असल में विद्रोही जी के कविता पाठ करने का अंदाज ही ऐसा था जैसे बंजर जमीन में लहलहाती हुई फसल। दरअसल, विद्रोही जी को हर साल इस प्रोग्राम में बुलाया जाता था। ऐसा सीनियर्स का कहना था। प्रोग्राम शुरू होने से पहले विद्रोही जी खुद अपनी कविताओं का पाठ करते थे। अपनी कविताओं का पाठ करने के बाद विद्रोही यह भी कहते थे कि कभी-कभी दूसरे की कविताओं का भी पाठ कर लेना चाहिए। खैर, जब हम लोगों ने अपने जूनियर्स को फ्रेशर्स पार्टी दिया तो हम लोगों ने भी विद्रोही जी को उसी तरह स्मरण किया जैसे हमारे सीनियर्स ने किया था। और याद भी क्यूँ न करें वह अपना कवि, जेएनयू का कवि जो था। इस तरह 'विद्रोही जी' को जानने का सिलसिला शुरू हुआ।

एक दिन जेएनयू छात्रसंघ के साथ प्रोटेस्ट करने यूजीसी चला गया। उस समय 'आइसा' छात्र संगठन जेएनयूएसयू में अपना दबदबा बनाया हुआ था। आशुतोष कुमार छात्र संघ अध्यक्ष थे। उनके नेतृत्व में मैं भी प्रोटेस्ट में निकल पड़ा। ठीक-ठीक याद नहीं है कि किस मांग के लिए यह प्रोटेस्ट किया गया था। लेकिन जो भी हो विद्रोही जी को मैंने पहली बार आंदोलन में भाग लेते हुए वहीं देखा। ...अहा! जिस तरह विद्रोही जी की कविताएं हैं उसी तरह उनका शारीरिक सौष्ठव। उनकी शारीरिक बनावट का क्या कहना? उनका पूरा का पूरा व्यक्तित्व ही पूंजीवादियों के खिलाफ था। दूर से देखते हुए आसानी से यह कहा जा सकता था कि विद्रोही जी आ रहे हैं। उनको देख कर लगता था कि जैसे फैक्ट्री मालिकों को दरेरा देकर आ रहे हों। और दरेरे क्यूँ न? इन लोगों ने आम जनता का खून चूसने का संकल्प जो ले लिया है। कुछ इसी रूप में विद्रोही जी ऊँचे स्वर में कविता पाठ कर रहे थे। वे अपने भाषण के दौरान पूरे गर्म जोशी के साथ शासन को ललकार रहे थे और कुछ शेर-ओ-शायरी भी कर रहे थे। विद्रोही जी शरीर से भले बूढ़े लगते थे लेकिन वे पूरे जोश में हमेशा नौजवानों से ज्यादा सक्रिय रहा करते थे। वह भी कोई आंदोलन है जिसमें विद्रोही जी सरीक न हों, यह हो नहीं सकता। और हो भी न क्यों? विद्रोही जी ने अपना जीवन जो आन्दोलनों के पीछे जो लगा दिया। इसलिए वे इससे विलग क्यों रहते? उनका यथाशक्ति श्रम ही तो था जो आम जनता और छात्रों के लिए हर समय मिलता रहता था। असल में विद्रोही जी किसी भी प्रोटेस्ट को बहुत गंभीरता से लेते थे। चाहे वह विश्वविद्यालय

स्तर का हो या देश-दुनिया के स्तर का। उनकी प्रतिबद्धता का कोई सानी नहीं था। इसके लिए उनका समर्पण, उनकी निर्भीकता बेजोड़ थी। मैंने उनको आंदोलन में जब-जब देखा अगली कतार में देखा। तब उनके प्रति और सम्मान बढ़ गया। क्योंकि उनकी कविताएं और व्यक्तित्व एक थे। जबकि अमूमन यह होता है कि कवि और कविता में दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं रहता है। कवि क़सीदे गढ़ता रहता है लेकिन उसकी जीवन क़सीदों से बिलकुल भिन्न होती है। कबीर, नागार्जुन और मुक्तिबोध की तरह विद्रोही भी जमीनी लोगों से जुड़े हुए कवि थे। जिस तरह ये कवि अपने समय के साथ चलते हुए सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों से टकराते थे, उसी तरह विद्रोही भी अपने समय के सवालों से मुठभेड़ करते हुए नजर आते दिखाई दिए। उन्होंने कभी भी अपने को समाज से विलग नहीं किया। वेशभूषा, खान-पान और विचार से हर समय प्रतिबद्ध रहे।

मुझे ठीक-ठीक याद है, प्रथम सत्र समाप्त होने के बाद मैं ठंड की छुट्टियों में घर चला गया था और जल्द ही छुट्टियाँ काटकर घर से वापस जेएनयू आ गया। एक दिन तकरीबन रात के नौ-दस बजे मैं और अभिषेक टेफलास (छात्रसंघ भवन) की तरफ निकल गए और घूमते-घामते विद्रोही जी से मिलने का मन हो चला। कड़ाके की ठंढ थी। हम दोनों विद्रोही जी के कमरे में पहुँचे। रूम में प्रवेश करते ही यह देखने को मिला कि केवल विद्रोही जी अकेले सो रहे हैं। कमरे में उनका गद्दा, रज़ाई और वे। और कुछ बे-तरतीब अलमट पड़ा हुआ था। कुछ डिबिया और बोतल उनके सिराने पड़ी हुई थी। शायद पानी पीने का बोतल था। कुछ इस तरह विद्रोही जी छात्रसंघ भवन में अपना बसेरा बनाए हुए थे... उनके अंतिम संस्कार का डोला भी वहीं से उठा। खैर, हम दोनों विद्रोही जी को आवाज़ दिये। विद्रोही जी सो रहे थे। वे फर्श पर गद्दा बिछा कर सोये हुए थे। अंदर से कुनमुनाते हुए बोले कौन? अभिषेक बोला मैं 'अभिषेक'! उन्होंने पूछा कोई काम है क्या? हमने जवाब दिया नहीं, बस आपकी खबर लेने चले आए। उन्होंने कहा अच्छा। और कहने लगे 'बहुत ज़ोर की ठंड है'। ठंड तो काफी थी। दिसम्बर का महीना था और हमारी भी दिल्ली की पहली ठंड थी। उनका शरीर बूढ़ा हो चला था तो जाहिर सी बात है अवस्था घटने पर ठंड ज्यादा लगती है। खैर, अभिषेक उनसे बातों का सिलसिला जारी किए हुए था और मैं सुन रहा था और विद्रोही जी बिना मुँह उघारे रज़ाई के अंदर से ही बात कर रहे थे। अभिषेक कहने लगा विद्रोही जी आप की एक कविता संग्रह निकालने का प्लान बना रहे हैं। जल्द ही निकालेंगे। तब तक विद्रोही जी किताब का नाम सुनते ही भड़क गए और बोलने लगे 'आप लोगों को जो करना हो करिए लेकिन मुझसे इस मामले में बात न करिए। पहले आप लोग अपना काम करिए। 'असल में विद्रोही किताबों के भूखे नहीं थे। वो छपने की लालसा अपने मन में नहीं पालते थे। मैंने जब-जब उनसे किताब प्रकाशित करने को लेकर बात की तब-तब वे बिना कुछ कहे मुकर जाते। असल में दुनिया अपने किताब की दीवानी होती है, और हो क्यूँ न? यह सबके बस की बात थोड़ी है। अपने छपे को निहारना, (चाहे वह कूड़े के भाव हो) उसकी ताज़गी में रमना हर रचनाकार को भाता है। उसके जीवन की असल पूँजी जो होती है। लेकिन विद्रोही जी के लिए यह बड़ी बात नहीं थी। वे छपने से कोशो दूर निकल जाते थे।

विद्रोही जी की एक ख़ास बात यह थी कि वे अपनी कविताओं को लेकर चिंतित नहीं होते थे जितना कि हम लोग। उनसे कविताओं को सुनते हुए यह लगता था कि उनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि वे अपनी सभी कविताओं को वो याद रखने के साथ-साथ दूसरे कवियों की भी कविताएं याद रखते थे। उनकी स्मरण शक्ति बेजोड़ थी। एक बार उनसे गंगा ढाबा पर कविताओं को लेकर बात होने लगी तो उन्होंने किसी विदेशी कवयित्री की कविता सुनाना शुरू कर दिये। हालाँकि वह कविता मुझे याद नहीं है लेकिन इतना जरूर याद है कि वह कविता प्रेम पर थी। उनकी यही लिखत-पढ़त से उनकी कविताओं में दुनिया की झलक देखी जा सकती है। कहीं रोम है तो कहीं शबाना का जंगल। जो अपने आप में इतिहास के गलियारों से गुजरते हुए एशिया-यूरोप तक का सफर तय करते हैं। मोहनजोदड़ों की सभ्यता में अपने को पाते हुए चारों दिशाओं की क्रूर कहानियाँ बताते अपनी कविता की धरती में सबको पिरोते हैं। मातृसत्ता कैसे ख़त्म हुई और पितृसत्ता कैसे आई इसका ऐतिहासिक विवरण विद्रोही जी की कविताओं में देखी जा सकती है। विभाजन की त्रासदी और नानी के आँख का सूरमा मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' की याद दिलाती है। गनी मिया की याद दिलाती है। विद्रोही जी से बात करते हुए वे इन्हीं सब बातों पर चर्चा करते रहते थे। विद्रोही जी से जान पहचान काफी हो चली थी। उनसे अक्सर गंगा ढाबा पर ही शाम के समय मुलाक़ात हो जाती थी। उनसे मिलने के बाद उनका वेतनमान दस रुपए होता था। इससे ज्यादा वो कभी न मांगे। उसके बाद चलते बनते थे। जब उनका मूड नहीं करता तो वह दूर निकल कर अकले बैठ जाते थे और दूर तक देखते हुए अपने आप में गाली देने लगते थे। कभी-कभी सामने वाले को यह लगता था कि वे उसी को गाली दे रहे हैं। और वह व्यक्ति खुद संशय में हो जाता था। जबकि ऐसा नहीं था। एक बार तो मैं खुद उनको चाय देकर इसका शिकार हो

गया और डर भी गया। लेकिन थोड़ी देर बाद पता चला कि वे कहीं और रमे हुए हैं।

तीसरे सेमेस्टर (एम.ए.) की बात है। कहानी की क्लास थी। प्रेमचंद की 'कफन' कहानी पर मुझे सेमिनार पेपर लिखने को मिला था। कफन कहानी को लेकर प्रेमचंद और आलोचकों से मैं सहमत नहीं था। वह इसलिए कि कोई भी स्त्री दलित बस्तियों में प्रसव पीड़ा से इस तरह मरती नहीं। मुझे लगा कहानीकार ने कुछ ज्यादा ही कल्पना कर लिया है। यह बात मुझे पच नहीं रही थी। इसलिए मैं बृजेश यादव से इस विषय पर बात करना चाहता था और उन्होंने सहमति भी दे दी। हम उसी दिन शाम को गंगा ढाबा पर निकल लिए और रोजाना की तरह चाय लेकर चलते बनें। तब तक विद्रोही जी भी मिल गए और हम तीनों साथ हो लिए। बृजेश जी ने बात शुरू करते हुए कहा कि, विद्रोही जी इस बालक को कफ़न कहानी के संदर्भ में कुछ बात करनी है। आप कुछ इस पर कहें– बोले। कफ़न कहानी को लेकर उन्होंने तकरीबन दो घंटे बोले। जमीनी हक़ीक़त और समाजशास्त्रीय पद्धति से। विद्रोही जी की कुछ-कुछ उनकी बातें उस समय समझ से परे हो चली। कुछ समझ में आई। उन्होंने कफ़न कहानी में बुधिया को लेकर एक उदाहरण से समझाने की कोशिश की और वे कहने लगे कि, 'गाँव में छोटी जातियों की लड़कियाँ जब चारा काटने या गाय-भैंस चराने जाती थी तब उच्च वर्ग के लोग उनका हाथ पकड़कर उनके साथ जबरदस्ती करते थे। यही हाल कफन कहानी में बुधिया के साथ हुआ होगा। 'इसलिए प्रेमचंद ने यह कहानी ऐसी लिखी है। मैंने उसके बाद कोई सवाल नहीं किया और उनके बात पर सोचने लगा कि विद्रोही जी कि व्याख्या अलग ढंग की है। मुझे सभी सवालों के जवाब मिल गए। असल में बहुजन समाज जिस सामाजिक उत्पीड़न का शिकार होते हुए सदियों से चला आ रहा था विद्रोही जी भी उसी समाज के एक अंग थे। उनके पुरखे भी इसी सामाजिक उत्पीड़न का शिकार हुए होंगे। विद्रोही जी भले मार्क्सवादी थे लेकिन जाति की सच्चाई से बकायदा वाकिफ़ थे। समान अर्थ और जाति को वे भलीभाँति जानते थे। तभी उन्होंने कफ़न कहानी को समझाने के लिए उदाहरण का सहारा लिया था। उन्होंने अंत में यह भी कहा कि यह जातिगत संरचना भारत की सच्चाई है। इसको नकारा नहीं जा सकता। तब तक मित्र नवीन सिंह भी आ पहुंचे। दुवा-सलाम हुई फिर सब चल दिये।

***

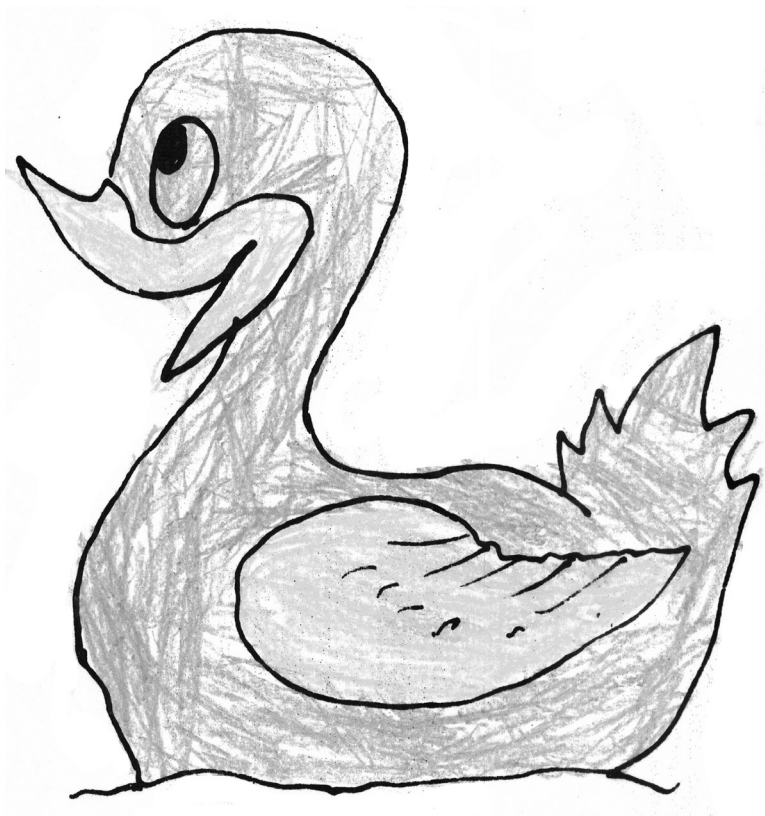

एम. विगनेश, नर्सरी स्कूल, जेएनयू

5वें गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान का आयोजन

रिपोर्टः सुमेर सिंह, राजभाषा प्रकोष्ठ

विश्वविद्यालय में दिनांकः 08 मार्च, 2018 को सम्मेलन केन्द्र के लेक्चर हॉल-3 में 5वें गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान (मेमोरियल लेक्चर) का आयोजन किया गया। इस अवसर पर बतौर मुख्य अतिथि प्रो. चन्दन चौबे, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा बतौर विशिष्ट अतिथि प्रो. नन्द किशोर पांडेय, निदेशक, केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, आगरा ने शिरकत की। हर वर्ष की तरह स्वर्गीय गुणाकर मुले जी की धर्मपत्नी श्रीमती शांति मुले ने भी कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

कार्यक्रम में मंच संचालन डॉ. पूनम कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर ने किया। स्वागत वक्तव्य जेएनयू के कुलसचिव डॉ. प्रमोद कुमार ने दिया। प्रो. चन्दन चौबे ने अपने उद्‌बोधन में हिंदी के बदलते स्वरूप एवं बदलते समय में हिंदी की महत्ता पर जोर दिया। उन्होंने कई प्रसंगो के माध्यम से आधुनिक हिंदी के बढ़ते व्यापक रूप पर चर्चा की। प्रो. चन्द किशोर पांडेय जी ने अपने सारगर्भित उदबोधन में न केवल हिंदी के राजभाषायी स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला, अपितु हिंदी के विभिन्न पक्षों यथा भाषिक साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि के माध्यम से हिंदी के व्यापक स्वरूप का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा या अन्य कोई विदेशी भाषा सीखना अच्छी बात है, पर अपनी भाषा, स्वभाषा को त्यागकर दूसरी भाषा/बाह्य भाषा का गुणगान करना अच्छी बात नहीं है। उन्होंने भारतीय भाषाओं में परीक्षा देने वाले छात्रों तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से परीक्षा देने वाले छात्रों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर भारतीय भाषाओं एवं हिंदी के महत्व पर प्रकाश डाला।

कार्यक्रम के अंत में धन्यवाद ज्ञापन प्रो. सुधीर प्रताप सिंह ने दिया। उन्होंने कार्यक्रम को सफल बनाने में सभी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले व्यक्तियों का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का समापन जलपान के साथ हुआ।

***

'साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की जरुरत है जेएनयू में साहित्य के इतिहास लेखन पर दो दिवसीय परिसंवाद आयोजित

रिपोर्ट : प्रियंका कुमारी और प्रदीप कुमार; शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू।

पिछले दिनों 2-3 फरवरी 2018 को भारतीय भाषा केंद्र के छात्रों द्वारा एल्युमनी एसोसिएशन ऑफ जेएनयू के सहयोग से एल्युमनी के समिति कक्ष में साहित्य के इतिहास लेखन पर एक परिसंवाद का आयोजन किया गया। 'साहित्य के इतिहास लेखन' विषय पर केंद्रित इस परिसंवाद में मुख्य रूप से भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू के वर्तमान और पूर्व छात्रों ने हिस्सा लिया।

परिसंवाद के पहले दिन डॉ. वीणा सुमन और प्रो. देवेंद्र चौबे की अध्यक्षता में शोधार्थियों ने हिंदी में हो रहे शोध और इतिहास लेखन पर अपने विचार रखें जिस पर शोधार्थियों में आपस में एक जीवंत और रचनात्मक चर्चा-परिचर्चा भी हुई। पर्यवेक्षक के रूप में पूरे चर्चा को ध्यान से सुन रहे डॉ. गणपत तेली, डॉ. जीतेन्द्र कुमार यादव, डॉ. सरफ़राज़ अहमद ने भी अपने विचार रखे और शोध कार्य से सम्बंधित कुछ जरूरी सलाह दिया। डॉ. वीणा सुमन ने संपूर्ण चर्चा के दौरान प्रत्येक शोधार्थी के शोध सार की प्रस्तुति के अंत में उस पर महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं और भविष्य में और भी बेहतर शोध कार्य करने के लिए शुभकामनाएँ दीं। प्रोफेसर देवेंद्र चौबे ने कहा कि साहित्य का एक बड़ा लक्ष्य है किसी भी देश की सामाजिक और जातीय जिंदगी को समझना। इसीलिए शोधार्थी और विद्वान् उसके बहाने अपने समय और राष्ट्र की निर्मितियों को समझने का प्रयास करते है।

परिसंवाद के दूसरे दिन हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रारंभिक काल पर केंद्रित सत्र एक का संचालन डॉ. अजय कुमार यादव ने किया। प्रो. पुरुषोत्तम बिलिमाले और डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थे। इस सत्र में शोधार्थी स्तुति राय, नेहा राव और मून इल दो ने साहित्य के इतिहास

लेखन के संदर्भ में उनके द्वारा किए जा रहे शोध कार्य के महत्व पर विस्तार से विचार किया। सत्र का आरंभ करते हुए डॉ. अजय कुमार यादव ने कहा कि हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन में भक्तिकाल के कवियों के अंतर्विरोधों पर भी सम्यक रूप से विचार होना चाहिए। स्तुति राय ने जहाँ हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के दरकिनार कर दिए गए कवियों और रचनाओं को शामिल करने पर जोर दिया, वही नेहा राव ने रीतिकाल से पहले और बाद की रीतिपरक और शृंगारिक कवियों और रचनाओं को भी रीतिकाल के अंतर्गत ही रखे जाने की बात कही। मून इल दो ने रामचरित मानस के संदर्भ से बताया की विदेशियों को किसी भारतीय कथा को समझने में किस तरह की समस्या होती है। प्रो. पुरुषोत्तम बिलिमले ने बताया कि किस तरह एक ही मूल कथा या मिथक से जुड़े अनेकों और कभी-कभी परस्पर विरोधी आख्यानों से कन्नड़ ही नहीं बल्कि दूसरे सभी भारतीय भाषाओं का लोक और शिष्ट साहित्य अटा-पटा है। डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा कि क्या साहित्य की रचना या फिर इतिहास लेखन ही एक स्वायत्त प्रक्रिया कही जा सकती है?

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन पर केंद्रित सत्र दो का संचालन डॉ. गणपत तेली ने किया। प्रो. अख़लाक़ अहमद आहन और डॉ. सईद मुबीन जेहरा पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थे। इस सत्र में शोधार्थी प्रदीप कुमार और संजय कुमार ने साहित्य के इतिहास लेखन के संदर्भ में उनके द्वारा किए जा रहे शोध कार्य के महत्व पर विचार किया। सत्र का आरंभ करते हुए डॉ. गणपत तेली ने कहा कि राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद के परिपेक्ष्य में आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास को नए दृष्टि से समझा जा सकता है। प्रदीप कुमार ने बताया कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में 'जाति' की अवधारणा का उपयोग नहीं होना चाहिए क्योंकि अब इसका कोई सैद्धांतिक अथवा व्यवहारिक आधार नहीं बचा है। संजय कुमार ने कहा कि हिंदी साहित्य के इतिहास में राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिंद' द्वारा खड़ी बोली (हिंदी) के विकास और प्रचार-प्रसार में निभाई गयी भूमिका को उचित स्थान नहीं मिल सका। प्रो. अख़लाक़ अहमद आहन ने कहा कि अच्छे इतिहास लेखन के लिए विषय से संबंधित संपूर्ण सामग्री की खोज और उसका अध्ययन जरूरी है, परंतु व्यवहार में अक्सर ऐसा नहीं हो पाता है।

आधुनिक साहित्य के इतिहास लेखन पर केंद्रित सत्र तीन का संचालन भी डॉ. गणपत तेली ने किया। डॉ. नूरजहाँ मोमिन पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थीं। इस सत्र में शोधार्थी अशोक कुमार, आरती, और नीलम रानी ने क्रमशः साहित्य के इतिहास लेखन में कुछ खास रचनाकारों, विमर्शों और विधाओं के उपेक्षित होने जाने की बात कही। समकालीन साहित्य के इतिहास लेखन पर केंद्रित सत्र चार और पाँच का संचालन डॉ. गणपत तेली और डॉ. जीतेंद्र कुमार यादव ने संयुक्त रूप से किया। प्रो. देवेंद्र चौबे और डॉ. नूरजहाँ मोमिन पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थे। इन दोनों सत्रों में शोधार्थी विजय कुमार, सुशील कुमार, जाहिदुल दिवान, लक्ष्मी कुमारी जोशी, सरिता माली रामसूरत और प्रियंका कुमारी ने साहित्य के इतिहास लेखन में उनके शोध विषयों के महत्व पर चर्चा की। विजय कुमार और सुशील कुमार ने जहाँ साहित्य में समाज के यथार्थवादी चित्रण और उसका साहित्य के इतिहास लेखन में महत्त्व पर जोर दिया, वहीं जाहीदुल दिवान, लक्ष्मी कुमारी जोशी और सरिता माली रामसूरत ने क्रमशः असमिया, नेपाली और मराठी साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन पर पड़ सकने वाले प्रभावों-परिवर्तनों की चर्चा करने के साथ-साथ कहा कि भारतीय या विश्व साहित्य के सम्मलित इतिहास लेखन के दृष्टि से भी हिंदी साहित्य के इतिहास को देखा जाना चाहिए। प्रियंका कुमारी बताया कि नब्बे के दशक में आयी भूमंडलीकरण और बाज़ारवादी संस्कृति के हिंदी साहित्य में किस तरह से दर्ज़ हुआ है। डॉ. जीतेंद्र कुमार यादव ने कहा कि समकालीन हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन में अन्य विमर्शों के साथ सामाजिक न्याय के लिए हुए साहित्यिक और गैर-साहित्यिक प्रयासों की महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। डॉ. नूरजहाँ मोमिन ने कहा कि साहित्य के इतिहास लेखन में पारंपरिक दृष्टियों के अलावा समाज विज्ञान के दूसरे विषयों में निरंतर विकसित हो रहे सिद्धांतों और दृष्टियों का भी सहारा लिया जाना चाहिए।

अंत में प्रो. देवेंद्र चौबे ने समकालीन समय में साहित्य के इतिहास लेखन की चुनौतियों पर अपने विचार रखे। आधुनिक हिंदी साहित्य की परंपरा को पूर्व-उपनिवेशवाद, उपनिवेशवाद, उत्तर-उपनिवेशवाद तथा प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (सन 1857 ई.) के संदर्भ में समझना और व्याख्यायित करना, साहित्येतिहास चिंतन के केंद्र में है। इसके बाद धन्यवाद ज्ञापन के साथ परिसंवाद का समापन हुआ।

सच्ची शिक्षा का लक्ष्य ही मनुष्य के व्यक्तित्व व यथार्थ मानव का निर्माण करना होता है।

- स्वामी विवेकानन्द

जब जैव विविधता अनिवार्य है तो भाषिक विविधता क्यों नही?ः

रिपोर्ट : डॉ. गंगा सहाय मीणा

विश्व मातृ भाषा दिवस के अवसर पर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र में कन्नड़ भाषा पीठ, जे.एन.यू. के तत्वावधान में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का विषय था– 'राष्ट्र निर्माण में मातृ भाषाओं की भूमिका' रखा गया था। पहले सत्र का संचालन रिसर्च स्कॉलर अंज़र हुसैन ने की। प्रोग्राम में अपनी बात रखे हुए प्रो. पुरोषोत्तम बिलिमले, कन्नड़ भाषा पीठ (जे.एन.यू.) के अध्यक्ष ने कहा कि मेरी भाषा करप्ट हो रही है। मैं कर्नाटक का रहने वाले हूँ और मेरी मातृभाषा तुलू है, राज्य की कार्यालयी भाषा कन्नड़ है और काम मैं हिंदी क्षेत्र में कर रहा हूँ। उन्होंने यह चिंता जाहिर की कि उनकी मातृभाषा तुलू कर्नाटक की 80 लाख आबादी के द्व ारा बोली जाती है लेकिन वहाँ के विद्यालयों में वहाँ के बच्चों को अपनी मातृभाषा में नहीं बल्कि कन्नड़ भाषा में पढ़ने पर मजबूर होना पड़ रहा है। प्रो. बिलिमाले ने कन्नड़ को हिंदी से और हिंदी को अंग्रेजी से खतरा बताया साथ ही मातृभाषा तुलू को कन्नड़ से और उनके क्षेत्र की एक अन्य भाषा कोरेगा को अपनी मातृभाषा तुलू से खतरा बताया। प्रो. बिलिमाले ने कहा कि हर छोटी भाषा या बोली अपने से छोटी भाषा या बोली को दबा रही है। उन्होंने आने वाले खतरे के प्रति भी हमें सचेत करते हुए कहा कि आने वाले 50 वर्षों में हमारी 170 से अधिक मातृभाषाएँ मर जायेगी।

सत्र की दूसरी वक्ता जे.एन.यू. के सी.पी.एस. में प्राध्यापिका प्रो. आशा सारंगी ने अपने पी.पी.टी. के माध्यम से भारत में भाषा की विविधता और उसकी स्थिति पर विभिन्न स्लाइड्स के मध्यम से भाषा की ऐतिहासिकता और जटिलता पर बात की। प्रो. सारंगी ने भारत में अभी तक हुए सभी जनगणना में भाषाओं की स्थिति को चार्ट के माध्यम से बताया। जनगणना के अनुसार आज 184 भाषाएँ ऐसी हैं जिनको बोलने वाले 10 हजार से कम हैं। उन्होंने ग्रियर्सन का जिक्र करते हुए कहा कि भारत की भाषाओं का पहला अध्ययन उन्होंने ही किया था। जनगणना में होने वाली उन स्थितियों का भी जिक्र किया जिसमें किसी क्षेत्र में जनगणना करने वाले अधिकारी जब गाँव में जाते हैं तो उनके पास भाषा की जो सूची होती है उसमें उस राज्य विशेष की प्रमुख भाषा या कहें बड़ी भाषा ही होती हैं जिसकी वजह से वहाँ के लोगों की मातृभाषाएँ सरकार की सूची में नहीं आ पाती। मातृभाषाओं को लेकर भारत के संविधान में जो प्रावधान है उसका अनुपालन नहीं होता है। भारतीय भाषाई अल्पसंख्यक आयोग तथा तमाम सरकारी प्रावधानों का जिक्र प्रो. सारंगी ने किया।

सत्र के तीसरे वक्ता के रूप में डॉ. सुशांत मिश्रा ने अपनी बात रखी। भारत में भाषा और उसकी स्थिति पर पी.पी.टी. के माध्यम से अनेक आयामों को केंद्र में रखते हुए बात की। भाषा का जुड़ाव सिर्फ सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति से ही नहीं होता बल्कि आर्थिक स्थिति से भी होता है। भाषा का पावर और सत्ता से भी रिश्ता है। उन्होंने भाषा के विभिन्न आयामों को एक भाषा वैज्ञानिक के नजरिये से समझाया। राजनीतिक एजेंडा भाषा वैज्ञानिक के लिए नहीं होता है। भाषा वैज्ञानिक स्वछंद हो कर भाषा को देखता है। भाषा वैज्ञानिक के लिए भाषा की सीमा वोट बैंक नहीं है। प्राकृत भाषा के 10 अन्य रूपों/ भाषाओं का भी जिक्र किया। उन्होंने भारतीय भाषा परिवार के बारे में कहा कि इसमें कुछ खामियाँ हैं। सांस्कृतिक विविधता से भी भाषा बनती है। उन्होंने एक सफाई वाले का उदाहरण दिया कि अगर सफाई वाला झाड़ू लगाता है तो उसके पास झाड़ू के लिए भी अनेक शब्द होंगे जिसका प्रयोग वह अनेक प्राकर के झाड़ू के लिए करता होगा। हमारी संस्कृति बदलती है तो भाषा का स्वरूप भी बदल जाता है। भाषा की विविधता सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के सभी मुल्कों में एकसमान है।

डॉ. अरविंद मिश्रा जे.एन.यू. के ज़ाकिर हुसैन सेंटर फॉर एजुकेशन में प्राध्यापक सत्र के चौथे वक्ता के रूप में अपनी बात भारत की शिक्षा नीति को केंद्र में रख कर की। उन्होंने मातृभाषाओं की वर्तमान स्थिति से अवगत कराते हुए। भाषा के विकास में मानव की सामाजिक भूमिका का जिक्र किया। डॉ. अरविंद ने आज के शिक्षण संस्थानों में योग्यता के परीक्षण की बात करते हुए मनोवैज्ञानिक शोध की बात की। अमेरिका में गोरे-काले बच्चे और भारत में मध्य और उच्च वर्ग के बच्चों के बीच उनकी योग्यता को लेकर किए गए शोध का जिक्र करते हुए कहा कि भाषा, राग-रूप, पहनावे की विषमता से बच्चों की योग्यता पर भी फर्क पड़ता है। सत्र के आखिरी वक्ता वरिष्ठ पत्रकार राहुल देव ने संगोष्ठी के विषय को राष्ट्र निर्माण की जगह व्यक्ति निर्माण में मातृभाषाओं की भूमिका पर जोर देते हुए अपनी बात शुरू की। उन्होंने कहा कि राष्ट्र निर्माण के जितने तत्व हैं उनमें भाषा का महत्व सर्वाधिक है। कहा कि राष्ट्र व्यक्ति से और व्यक्ति भाषा से बनता है। भाषाओं को समझने के लिए किसी भी भाषा की विविधता को समझना आवश्यक है। आज हमारी एक नहीं दर्जनों भाषाएँ मरने के कगार पर हैं। भाषाओं के मरने में कोई शब्दगत ध्वनि नहीं निकलती है। वह निःशब्द मर जाती हैं। राहुल देव ने यह भी कहा कि आधुनिक शिक्षा ने हमारे सभी लौकिक ज्ञान को नष्ट

कर दिया। उन्होंने कहा कि भारतीय भाषाओं का भविष्य क्या है? इसके बारे में जब मैं सोचता हूँ तो बहुत ही चिंतित हो जाता हूँ, आज जो स्थिति मेरे सामने खड़ी है वह भाषाओं के लिए सुखद नहीं है। अगर अब भी हम हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहे तो फिर भविष्य में कुछ कर पाना असंभव हो जाएगा। भाषाओं जो संविधान में प्रावधान हैं उसमें कितने भाषा वैज्ञानिक थे? आज भारत को नए सिरे से अपनी भाषाओं के बारे में सोचना होगा।

दूसरे सत्र के प्रमुख वक्ता– डॉ. गंगा सहाय मीणा (जे.एन.यू.), चंद्रसेखर एन.पी. (लोकसभा में अनुवादक), सचिन दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ. रमेश अरोली कमला नेहरू कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) और डॉ. एन. चन्द्र सेगरण (जे.एन.यू.) थे। सत्र का संचालन डॉ. मनीवन्नन ने किया। सत्र की शुरुआत पहले वक्ता के रूप में डॉ. चंद्र सेगरण ने किया। उन्होंने भारत में भाषाओं की राजनीति पर अपनी बात की शुरुआत की। तमिल भाषा के इतिहास को बताते हुए उसके उन शहीद होने वाले को याद किया जिन्होंने तमिल भाषा के लिए अपनी जान दी। विश्व की सर्वाधिक पुरानी भाषा तमिल है। उत्तर भारत की अनेक भाषाओं का जिक्र करते हुए कहा, यहाँ की अनेक भाषाएँ हिंदी में आ गयी और वहाँ की संस्कृति भी। इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी हो रहा है। सत्र के दूसरे वक्ता के रूप में डॉ. गंगा सहाय मीणा ने भारत में आदिवासी भाषा की स्थिति को केंद्र में रख कर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि सत्ता को आदिवासियों की जमीन एवं संसाधन चाहिए उनकी भाषा और संस्कृति की विविधता नहीं। जब राष्ट्र निर्माण की बात होती है तो आदिवासी और उनकी भाषाओं को हाशिये पर रख दिया जाता है। यूनेस्को की उस सूची का डॉ. मीणा ने जिक्र किया जिसमें भारत की लुप्तप्राय भाषाओं के बारे में बताया गया है, उस सूची की लगभग सारी भाषाएँ आदिवासियों की भाषाएँ ही हैं। उन्होंने उन प्रमुख बिन्दुओं की ओर भी इशारा किया जिससे किसी भाषा के ऊपर विलुप्त होने का खतरा मँडराता है। आगे राष्ट्रवाद के बारे में कहा कि जो जितना राष्ट्रवादी है वह उतना ही बहुभाषिकता से भागता है। उन आदिवासी क्षेत्र की भाषाओं का भी जिक्र किया जहाँ उनको हिंदी आती नहीं है लेकिन फिर भी उनको पढ़ाई जा रही है। शिक्षा व्यवस्था पर भी उन्होंने चोट और कटाक्ष किया और कहा– "आज शिक्षा का पैमाना विषय ज्ञान से अधिक भाषा ज्ञान हो गया है। भारत की सभी शिक्षा नीति मातृभाषाओं के पक्ष में होती हैं लेकिन जब उनको लागू करने की बात आती है तो सारी नीतियाँ हमें असफल दिखती हैं।"

सत्र के तीसरे वक्ता लोकसभा में द्विभाषीय के रूप में काम करने वाले चन्द्रशेखर थे। उन्होंने कहा– हम किसी भी राष्ट्र का निर्माण, सीमेंट, लोहा और रेत से नहीं कर सकते हैं बल्कि राष्ट्र का निर्माण भाषा, साहित्य और संस्कृति से करते हैं। हम हिंदी का विरोध नहीं करते लेकिन हिंदी के तानाशाही रवैये का विरोध करते हैं। भारत की त्रि-भाषा सूत्र की खामियों को केंद्र में रखते हुए अपनी बात रखी। भारत के संविधान में भाषा को लेकर जो प्रावधान है उसकी चर्चा भी की। उत्तर भारत और दिल्ली का विशेष रूप से जिक्र किया और यहाँ के स्कूलों की स्थिति के बारे में बताया कि यहाँ लाखों लोग अन्य भाषाओं के रहते हैं यहाँ के स्कूलों में उनकी मातृभाषाएँ पढ़ाई नहीं जाती हैं। उत्तर भारत के स्कूलों में सरकार को दक्षिण भारत की भाषाओं को पढ़ाने का प्रावधान लागू करना चाहिए। दक्षिण भारत में हिंदी के विरोध का एक कारण यह भी है कि त्रि-भाषा सूत्र को उत्तर भारत में ठीक से लागू नहीं किया गया। संविधान कहता है कि अगर 10 बच्चें भी अपनी मातृभाषा पढ़ना चाहते हैं तो सरकार को स्कूलों में यह व्यवस्था करनी चाहिए। सत्र के चौथे वक्ता सचिन, दयाल सिंह कॉलेज में अँग्रेजी विभाग में प्राध्यापक ने अपनी बात भारत में अँग्रेजी की भूमिका को केंद्र में रख कर की। उनके वक्तव्यों से यह निष्कर्ष निकला कि भारत की भाषाओं पर खतरा अँग्रेजी भाषा से अधिक से हिंदी से है। अँग्रेजी अंग्रेज़ों के आने से पहले से ही भारत में थी। उन्होंने कहा कि अँग्रेजी भारत में अब पावर के प्रतीक के रूप में जानी जाती है, भारत में अँग्रेजी अब एक जाति के रूप में जानी जाती है। उन्होंने एक पुस्तक की चर्चा कि जिसका शीर्षक था 'इंग्लिश नेक्सट इंडिया'। सत्र के चौथे वक्ता दिल्ली विश्वविद्यालय के कमला नेहरू कॉलेज में प्राध्यापक डॉ. रमेश अरोली ने कन्नड़ भाषा के अखबारों का जिक्र करते हुए बताया कि किस प्रकार से कन्नड़ मीडिया में अँग्रेजी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। आजादी के बाद धीरे-धीरे अखबार उद्योग बनता गया उसको बताया। पी.पी.टी. के माध्यम से वहाँ के अखबारों के वर्तमान स्वरूप पर चर्चा की और बताया कि कन्नड़ भाषा के अखबार में अँग्रेजी शब्दों का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है।

संगोष्ठी का समापन आखिर में संध्या तिवारी ने धन्यवाद ज्ञापन देते हुए किया।

धर्म एक बहुत ही व्यापक विचार है जो समाज को बनाए रखने के सभी पहुलओं से संबंधित है।

- पं. दीनदयाल उपाध्याय

नए प्रकाशन

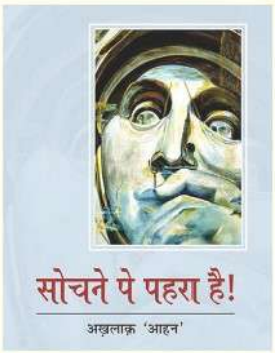

'सोचने पे पहरा है!' अख़लाक़ 'आहन' की एक तवील नज़्म का उन्वान है और उनके पहले शेरी मज़्मूआ का भी। वो नज़्म मज़्मुए में शामिल है।

प्रकाशक : नई किताब प्रकाशन, मूल्यः 150/-रु ISBN 978-93-230-2008-2

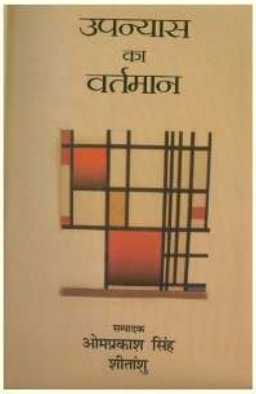

हिंदी उपन्यास का वर्तमान : सं. ओमप्रकाश सिंह/शीतांशु यह पुस्तक प्रो. ओमप्रकाश सिंह और डॉ. शीतांशु द्वारा सम्पादित नवीनतम प्रति है। प्रो. सिंह लम्बे समय से आलोचना लेखन और संपादन का कार्य कर रहे हैं। यह पुस्तक वर्तमान समय के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों को केंद्र में रखकर तैयार की गई है। इस पुस्तक में अलग-अलग उपन्यासों पर संकलित आलेख विशेषज्ञों और गंभीर अध्येताओं द्वारा लिखे गए हैं।

प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2018, मूल्य-700 रुपये।

मेनशियस कंफ्यूशियसवाद और उसके चार ग्रंथों में मेनशियस का अहम स्थान है। वह न केवल कंफ्यूशियस के सिद्धांतों के अतीत और भविष्य के बीच कड़ी का काम करता है, बल्कि उसकी विचारधारा को विकसित भी करता है।

मूल्य 650 ISBN 978-81-7714-663-7

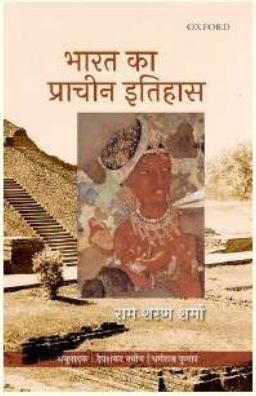

प्राचीन सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के उदय, धर्म एवं संप्रदायों की निलमति, विभिन्न साम्राज्यों के उत्थान-पतन और उनकी स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण के साथ यह पुस्तक भारत के प्राचीन इतिहास का सिलसिलेवार ब्यौरा प्रस्तुत करती है। हिन्दी माध्यम से इतिहास में रुचिशील अध्येताओं के लिए यह एक अनिवार्य पुस्तक है। ख्यातिप्राप्त इतिहासकार राम शरण शर्मा की इस पुस्तक का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद देवशंकर नवीन एवं धर्मराज कुमार ने किया है।

'औंतीगोन' जौं आनुई की यह कृति बीसवीं सदी के फ्रांसीसी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। सत्ता की क्रूरता का प्रतिपक्ष सृजित करते हुए यह कृति मनुष्यता और प्रेम को सृष्टि के जीवद्रव्य के रूप में स्थापित करने का उद्यम करती है। इस नाटक का अंत अपने पाठकों (दर्शकों) के लिए अर्थ की अंतहीन संभावनाएं तो छोड़ता ही है, साथ ही उनके अंतर्मन में किसी भी सफलता के समानांतर मानवीय रिश्तों के महत्व का एक आकाशदीप भी जलाता है। इसका अनुवाद किया है फ्रांसीसी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ प्रो सुशांत कुमार मिश्र और फ्रांसीसी साहित्य के युवा अध्येता डॉ. श्रीनिकेत कुमार मिश्र ने। प्रकाशक : Langers International, Daryaganj, New Delhi मूल्य 150 रुपये

हमें अपने देश की आध्यात्मिक शिक्षा और सभी प्रकार की ऐतिहासिक शिक्षा अपने हाथ में लेनी होगी और उस शिक्षा में भारतीय शिक्षा की सनातन गति स्थिर रखनी होगी।

- स्वामी विवेकानन्द

परिसर वीथिका

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 127वीं जयंती के अवसर पर चर्चा करते हुए जेएनयू के पदाधिकारीगण एवं विद्वतजन।

जेएनयू महिला क्लब द्वारा संचालित प्ले-स्कूल के वार्षिक कार्यक्रम में भाग लेते हुए कुलपति एवं महिला क्लब के सदस्यगण

जेएनयू में पं. दीनदयाल उपाध्याय व्याख्यानमाला में शिरकत करते जम्मू एवं कश्मीर के माननीय उप मुख्यमंत्री डॉ. जितेन्द्र सिंह।

जेएनयू में ई-रिक्शा सेवा का उद्घाटन करते हुए विश्वविद्यालय के कुलपति

जेएनयू में अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में मंचासीन मुख्य अतिथि श्रीमती संतोष यादव एवं अन्य वक्तागण

जेएनयू में यूपी राइज कार्यक्रम के उपलक्ष्य में आयोजित सांस्कृतिक संध्या

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव द्वारा प्रकाशित।
मुद्रकः रैकमो प्रैस प्रा.लि., ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110020